भक्ति के नियम

१. भगवान की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में विना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची।

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. वेदोपदेश		३८१
२. भगवद्भक्ति	[ले० पूज्य भोले बाबा जी	३८२
३. तुलसीदास जी और उनका महा काव्य	[ले० श्री नर्मदा प्रसाद खरे	३८६
४. आह्वान (कविता)	[ले० श्री बजनाथ जी भट्ट विशारद	३६१
५. भक्त की भावना	[ले० श्री लालचन्द जी	३६१
६. माता पुत्री सम्वाद	[ले० श्रीमती बहिन बयदेवी	३६५
७. श्याम छवि (कविता)	[ले० श्री मदन गोपाल 'सिंहल'	४००
८. ईश्वर भक्ति का फल निष्फल नहीं जाता	[ले० स्वामी आत्मानन्द जी	४००
९. मूर्त्ति पूजा का जन्म	[ले० श्रीदामोदर सहाय सिंह एल० टी० कलिंकर	४०३
१०. पुराण गाथा	[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबाजी	४०५
११. भजन		४११

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।=)
३.	वेदोपनिषद्	"	-)
४.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	=)
५.	ज्ञानधर्मोपदेश	"	=)॥
६.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	"	=)॥
७.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	"	)
८.	सत्य शब्द संग्रह	"	।=)
९.	शब्दसंग्रह	"	-)
१०.	सारसंग्रह	"	=)
११.	भाषा फक्किका प्रकाश	"	।=)
१२.	भगवद्भक्तांक	"	॥=)
१३.	भगवदंक	"	॥)
१४.	गवांक	"	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

भक्ति

गोपाल कृष्ण

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ५ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, जेष्ठ पूर्णिमा सं० १९८८ | अङ्क ९

वेदोपदेश

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ १ ॥

मित्र शत्रु प्रत्यक्ष दिन रात्रि हम सब को भय शून्य हों तथा सम्पूर्ण दिशाओं में हमारे मित्र हों, शत्रु न हों ॥ १ ॥

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वाति व्रणम् ।
बृहस्पतिर्मे तदुदधातु शंनो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥

जो क्रमी आंख हृदय मन की है और बहुत कमी बड़े स्वामी जो मेरे चक्षु और हृदय में हैं और मेरे मनमें जो व्याकुलता है वह बृहस्पति देव पूर्ण कर देवें। संसार के स्वामी हम पर प्रसन्न होवें ॥ २ ॥

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥३॥

हे सर्वदुःख विनाशक हम को सत्य सुख और शुभ गुणों से सदा बढ़ाइये! मुझ को सारा जगत् मित्र की चक्षु से देखे, मैं सारे जगत् को मित्र की चक्षुओं से देखूँ और हम सब आपस में मित्र की चक्षुओं से देखें ॥ ३ ॥

नमस्ते हर्षे शोचिषे नमस्तेऽस्त्वर्चसे अन्यांस्ते।
अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं शिवो भव ॥ ४ ॥

हे पाप विनाशक बुद्धि प्रकाशक आप को पूजनीय नमस्कार हो आप की अटल व्यवस्था हम से भिन्न अन्यायियों को दग्ध करें, आप हमारे लिये पवित्र कर्ता बल दायक हो ॥ ४ ॥

भगवद्भक्ति

[ले० श्री पूज्य भोले बाबाजी अनूपशहर]

कथा अंगद की।

अङ्गद जी जाति के राजपूत राजा सिलहदी रायसेन के चचा थे। पूर्व में यह भगवत् से विमुख थे। इनकी स्त्री परमभक्त और साधुसेविनी थी। एक समय इस स्त्री के गुरु आये, महल में भगवत् उपदेश और कथा कह रहे थे। इतने ही में अङ्गद जी आगये। इनको बुरा मालूम हुआ। गुरु चले गये। भगवत् कथा और गुरु का दर्शन और उपदेश बन्द हो जाने से स्त्री खानापीना, कहना सुनना त्याग कर दुःखी रहने लगी। अङ्गद जी उसके रूप पर आसक्त थे। स्त्री को दुःखी देख कर विकल हो गये, बहुत उपाय किया, यहाँ तक कि अपना सिर उसके चरणों पर रख दिया परन्तु वह प्रसन्न न हुयी। जब अङ्गद जी ने वचन देदिया कि जो तू कहेगी, सोई करूंगा, तब राजी हुयी और कहने लगी के भगवद्भक्ति अङ्गीकार करो और गुरु जी के शिष्य होकर उनकी सेवा किया करो। अङ्गद जी ने गुरुजी के शिष्य होकर माला तिलक धारण की, गुरुजी को अपने घर ले आये और भगवद्भजन और साधु सेवा में लग गये। थोड़े ही दिनों में इनका हृदय निर्मल होगया और भगवत् में सच्ची प्रीति होगयी।

एक बार राजा सिलहदीरायसेन ने किसी

शत्रु से युद्ध करने को चढ़ायी की और विजय पायी। शहर लूटते समय अङ्गदजी को एक मुकुट मिला, जिसमें एक सौ एक हीरे लगे हुये थे। अङ्गद जी ने सौ हीरे तो बेच कर साधु सेवा में लगा दिये और एक हीरे को, जो बहुत मूल्य का था और इसके समान दूसरा हीरा कहीं नहीं मिलता था, अपनी पगड़ी में यत्न से बाँध लिया और यह निश्चय किया कि इस को जगन्नाथ राय जी की भेट करूंगा, जब इस हीरे की ख्याति राजा तक पहुंची तो इसने इन से हीरा मांगा। अङ्गद जी ने हीरा न दिया और कहने लगे कि यह हीरा श्रीजगन्नाथराय जी की भेट हो चुका है, अब किसी को नहीं मिल सका।

अंगद जी की एक बहिन थी। इसके हाथ की रसोई का अङ्गद जी भगवत् को भोग लगाया करते थे और बहिन की लड़की को अपने साथ जिमाया करते थे। राजा के लालच के फंदे में आकर इनकी बहिन ने रसोई में विष मिला दिया। जब अङ्गद जी भगवत् को अर्पण करके भोजन करने को बैठे तब लड़की को भोजन करने को बुलाया। लड़की को उसकी माने छुपा रक्खा था। जब वह न आयी तो अङ्गद जी ने भोजन न किया। ऐसा देख कर लड़की की मा अपने को धिक्कार देकर रोने लगी और उसने भोजन में विष मिलाने का और लड़की को छुपाने का सब वृत्तांत कह दिया। अङ्गद जी ने अपने को विष देने का तो कुछ बुरा न माना परन्तु भगवत् को अर्पण कर देने का उनको शोच हुआ, इसलिये उसको घर से निकाल दिया और आप उस प्रसाद को अमृत जानकर भोजन कर लिया। पश्चात् प्रेम आनन्द में मग्न होकर भगवद्भजन करने लगे। उधर राजा इस विचार में था कि अब अङ्गद जी के मरने के समाचार आते हैं, इधर अङ्गद जी को महा प्रसाद में अमृत का दृढ़ भाव होने से विष ने अमृत का फल दिया, क्षण २ में मुख की शोभा और हृदय का आनन्द अधिक होता गया। जब यह समाचार राजा को मिला तो उस अभागे को बहुत ही लज्जा आई और शोक प्राप्त हुआ।

पश्चात् अङ्गद जी उस हीरे को लेकर श्रीजगन्नाथ जी की भेट करने के निमित्त चले। मार्ग में उनको राजा के चाकरों ने घेर लिया और कहा कि या तो तुम हीरा हमको देदो, नहीं हमारे साथ लड़ो। अङ्गदजी ने कहा कि क्षणमात्र ठहरो. यह कह कर वे तालाब के किनारे पर गये और भगवत् से विनय करने लगे कि महाराज! यह आपकी अमानत जो मेरे पास है, उसे आप संभाल लें। यह कह कर और सब को दिखा कर हीरा तालाब में फैंक दिया। भगवत् अपने भक्त की विनती सुन कर सात सौ कोस से आगये, हीरे को पानी तक पहुंचने न दिया, बीच में से ही ले गये और अपनी भक्ति और भक्तों का प्रताप प्रकट किया। अब तक वह हीरा श्रीजगन्नाथ राय जी की भुजा में शोभित है और दर्शन होते हैं। राजा के चाकरों ने बहुत ढूंढा और स्वयं राजा ने उस तालाब का पानी निकलवाकर तलाश किया कराया परन्तु हीरा हाथ न लगा, अन्त में लज्जित होकर घर लौट आया। अङ्गद जी भी घर लौट आये। पुजारियों ने श्रीजगन्नाथ जी की आज्ञा पाकर उस हीरे के पहुंचने का समाचार अङ्गद जी के पास भेज दिया। अङ्गद जी अति हर्षित होकर जगन्नाथपुरी को गये और उस हीरे सहित श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन करके आनन्द में मग्न हो गये। राजा अंगद जी को मानने लगा था, इन के

जाने से बहुत विकल हुआ, ब्राह्मणों को अङ्गद जी के लेने को भेजा परन्तु अङ्गद जी ने लौटने को स्वीकार नहीं किया, तब सब ब्राह्मण अन्नजल छोड़ कर धरना देकर बैठ गये, तब अङ्गद जी लौटे। राजा ने इनका आगमन सुन कर आगे जाकर उनको लिया और उन्हें देखते ही उनके चरणों से लिपट गया। अङ्गद जी ने राजा को उठाकर छाती से लगा लिया और राजा को भगवद्भक्ति और साधु सेवा का उपदेश किया। राजा ने अपनी समस्त सम्पत्ति अङ्गदजी पर न्योछावर की और भगवत् शरण होकर वह कृतार्थ हो गया।

कुं०—अङ्गद राजा भक्तवर, हरिपद दृढ़ विश्वास।
सौ हीरे हरि हित लगा, मात्र रखा इक पास॥
मात्र रखा इक पास, भेंट भगवत् के कीन्हा।
त्यागा विष सुख मानि, अमृत का फलसो दीन्हा॥
भोला! करि विश्वास, शान्तिदायक है हरिपद।
दुःख रूप संसार, सीख देते यह अङ्गद॥

कथा पुरुषोत्तमपुरी के राजा की।

पुरुषोत्तमपुरी के राजा परम भक्त थे। महाप्रसाद में इनकी ऐसी निष्ठा थी कि थोड़ी सी अवज्ञा से अपना हाथ कटवा डाला। कथा यह है, कि एक बार राजा चौसर खेल रहे थे, जगन्नाथ राय जी का पुजारी महाप्रसाद लेकर आया, राज के दहिने हाथ में पांसा था, महाप्रसाद के लेने को उन्होंने बाँया हाथ पसार दिया। पुजारी महाप्रसाद की अवज्ञा समझ कर क्रोधयुक्त होकर महाप्रसाद फेर ले गया। राजा इस अपराध से लज्जित होकर दौड़े और पुजारी से विनय प्रार्थना करके उन्होंने महाप्रसाद ले लिया, शिर पर धारण किया, चूकके पश्चात्ताप में बहुत चिंतायुक्त होकर बिना खाये पिये 'आहि' 'आहि' करते हुये घर में जाकर पड़ रहे। चिंता करते २ राजा ने यह उपाय सोचा कि किसी प्रकार से दाहिना हाथ दूर कर देना चाहिये क्योंकि यह हाथ भगवत् प्रसाद से विमुख हुआ है, फिर सोचने लगे कि मेरे हाथ को कोई कब काट सक्ता है, इस चिंता में मन मलिन चिंतायुक्त रहते थे। एक दिन मंत्री ने राजा से इस मानसी व्यथा का कारण पूछा तो कहने लगे।

राजा—प्रधानजी! रात के समय महल में एक भूत आता है, झरोखे में से हाथ डाल कर चिल्ल पुकार किया करता है, तुम आज रात को महल पर रहो जब प्रेत अपना हाथ झरोखे में डाले तब तुम इस का हाथ काट डालना, चूकना मत, उससे मैं बहुत तंग हूं।

राजा की आज्ञानुसार मंत्री चौकी पर रहा। जब राजा ने झरोखे में हाथ डाल कर चिल्लपुकार की तो मंत्री ने ऐसी तलवार मारी कि हाथ कट कर अलग जा पड़ा। जब मंत्री को मालूम हुआ कि राजा का हाथ है, तो वह बहुत ही लज्जित हुआ शोच करने लगा। राजा कहने लगा:—

राजा—प्रधानजी! भूत और प्रेत वह ही है, जो भगवत् से विमुख है, तुम चिन्ता मत करो, मुझे ऐसा ही करना चाहिये था।

भगवत् करुणासिंधुने अपने भक्त की ऐसी निष्ठा देख कर पुजारियों को आज्ञा की कि राजाको महाप्रसाद ले जाओ। उधर से पुजारी लोग प्रसाद लेकर दौड़े और इधर से राजा दर्शन करने को चले। मार्ग में पुजारी लोग मिले और राजा को महाप्रसाद देने लगे। राजा ने बड़े भक्ति भाव से दोनों

हाथ महाप्रसाद लेने को उठाये। इसी समय भगवत् कृपा से कटा हाथ भी नया निकल आया और राजा ने दोनों हाथों से महाप्रसाद लेकर छाती से लगाया और दर्शन करके प्रेमानन्द में पूर्ण होकर भगवद्भजन में लग गये। भगवत् ने कटा हुआ हाथ मंगवाकर अपने बाग में लगवा दिया, और वह दोना का सुगंधवान फूलों का वृक्ष हो गया। अब तक उसके फूल जगन्नाथराय जी को चढ़ाये जाते हैं। हे मंसाराम! एक पुराण में लिखा है कि भगवत् जगदीश का प्रसाद अन्न जल के सदृश नहीं है, भगवद्रूप है, जो लोग अन्न जल समझते हैं, वे पापी हैं, उनका नाश होता है।

कुं-राजा भगवद्भक्त ने, कटा दिया निज हाथ।
देखा भाव प्रसाद में, हुये प्रसन्न जगनाथ॥
हुये प्रसन्न जगनाथ, हाथ दूजा दे दीन्हा।
पहिला दोना बाग, वृक्ष दोना, का कीन्हा॥
भोला! कर हरि नेह देह कीटन का खाजा।
ममता उसकी छोड़, यही सिखलाते राजा॥

कथा सुरेश्वरानन्द जी की।

सुरेश्वरानन्द जी स्वामी रामानन्द जी के शिष्य परम भगवद्भक्त थे। इन्होंने महाप्रसाद की महिमा संसार में ऐसी प्रकाशित कि जिसके प्रभाव से हजारों को महाप्रसाद में दृढ़ विश्वास होगया। एकबार मार्ग चलते में किसी द्वेषी ने दारू और मांस का घड़ा आगे लाकर कहा कि भगवत् का महाप्रसाद है। सुरेश्वरानन्द जी ने भगवत् महाप्रसाद का नाम सुन कर उसे खा लिया और चल दिये। पीछे से उनके शिष्य जो आरहे थे, उन्हों ने भी देखा देख, वही आचरण किया। स्वामी जी ने इनसे पूछा कि तुमने क्या खाया? उत्तर मिला कि जो आपने खाया सो ही हमने खाया है। स्वामी जी बोले कि हमने महाप्रसाद का भोग लगाया है। यह कह कर स्वामी जी ने जो खाया था, उगल दिया और शिष्यों से भी ऐसा करने को कहा। सब ने ऐसा ही किया। स्वामी जी के उदर से तो तुलसी और गंगाजी की रेणुका निकली और शिष्यों के उदर से मांस निकला। शिष्य स्वामी जी के चरणों पर गिरे और उनको भगवद्भजन और महाप्रसाद का विश्वास हुआ। हे मंसाराम! समर्थ को विष भी अमृत है और असमर्थ को अमृत विष तुल्य है। शिवजी ने कालकूट का पान किया, अब तक वह उनके कंठ का भूषण है और राहु ने अमृत पान किया, इसका शिर काटा गया। कहा भी है:-

दो०-सूर्य सभी रस सोखता अग्नि वस्तु सब खाय।
गंगाजल में जो पड़े, गंगा जल ही जाय॥
नहिं समर्थ को दोष कुछ, शक्ति हीन को दोष।
मृत्यु सभी को मारता, फिर भी है निर्दोष॥

कथा श्वेतद्वीपवासी भक्तों की।

श्वेत द्वीप भगवत् का विहार स्थान है। जो भगवत् भक्त शास्त्रों में चरंजीव नाम से प्रसिद्ध हैं, विशेष करके इसी द्वीप में रहते हैं। एक बार नारद जी इस द्वीप में गये और ज्ञान का उपदेश करने की उनकी इच्छा हुयी। भगवत् ने उनको रोक दिया और कहा कि यहां के रहने वाले मेरे प्रेम और भक्तिभाव में लीन रहते हैं, भक्ति से भिन्न नहीं हो सकते, तुम अपनी ज्ञान कहानी कहीं अन्यत्र आरंभ करना। नारदजी उदास होकर बैकुंठ में गये

और सब वृत्तांत कहा। नारायण कहने लगे कि सचमुच श्वेतद्वीप का यही वृत्तान्त है, यदि विश्वास न हो तो चल कर देख लो। भगवत् नारद सहित वहाँ आये, सरोवर के किनारे एक पक्षी को देखा कि भगवद्ध्यान में मग्न है। नारायण ने नारद जी से कहा कि यह पखेरू ऐसा भक्त है कि हजार वर्ष से इसने जल नहीं पिया है। कारण इसका यह है कि भगवत् का भोग लगा हुआ जल इसको नहीं मिला और भगवत् प्रसाद के सिवाय और कुछ यह नहीं खाता पीता। परीक्षा निमित्त भगवत् ने थोड़ा सा जल अपनी प्रसादी करके सरोवर के किनारे डाल दिया। पक्षी भक्त ने तुरन्त ही इस जल को चोंच में लेकर पान कर लिया। नारद जी ने उस पक्षी की परिक्रमा की और उसे सेव्य और पूज्य समझ कर वे प्रेम से पूर्ण हो गये।

आगे चल कर इन्होंने एक भगवत् मन्दिर देखा। उस समय आरती होकर मंदिर के द्वार का ताला बन्द हो गया था। एक भक्त शीघ्रता से मन्दिर की तरफ आता हुआ इन्होंने देखा। भगवत् ने पूछा कि कहां जाता है? उत्तर मिला कि भगवत् आरती के दर्शनों के लिये जाता हूं। नारायण ने कहा कि आरती हो चुकी और मंदिर का ताला बन्द हो गया। यह सुनते ही वह तुरन्त ही पृथिवी पर गिर कर मर गया। पीछे इसकी स्त्री आयी। नारायण ने कहा कि तेरा पति मर गया, इसकी मृतक क्रिया करनी चाहिये। स्त्री ने उत्तर दिया कि तू क्या भगवत् से विमुख है कि भगवत् के दर्शनों से पति की क्रिया की विशेषता बतलाता है। नारायण ने कहा कि भगवत् आरती हो चुकी। स्त्री सुनते ही पति के सदृश मृतक हो गयी। पीछे पुत्रादिक घर के लोग आये, उनकी भी वही गति हुई। नारायण और नारद जी उन की भक्ति और प्रेम देख कर आगे चले और विचरते २ फिर इसी स्थानपर आये। संयोग वश भगवत् मंदिर खुल कर दूसरे समय की आरती आरंभ हुयी। शंख और झाँझ की ध्वनि सुन कर लोग भगवद्दर्शनों को दौड़े, वे लोग जो मर गये थे, उठ कर आरती में जा मिले और भगवत् दर्शन करके मन में प्रसन्न होते हुये अपने घर को चले गये। नारद जी ने यह चरित्र देखा तो विश्वासयुक्त होकर भगवद्भक्त हुये और उस द्वीप को तीनों लोकों का पूजा स्थान और वैकुंठ के सदृश समझने लगे।

कुं—सच्चे जो हरिदास हैं, नहीं चाहते मुक्ति।
तन से, मन से, वचन से, करते हैं हरि भक्ति॥
करते हैं हरि भक्ति, ध्यान भगवत् का धरते।
हरिचरणन में लीन, स्वस्थ मन नित्य विचरते॥
भोला! हो हरिभक्त, विश्व नाते सब कच्चे।
झूठे जग के मित्र, एक भगवत् ही सच्चे॥

तुलसीदास जी और उनका महाकाव्य

[ले० श्री नर्मदा प्रसाद खरे]

कोई मनुष्य मुद्राओं को अपना वित्त बतलाता, कोई अपने बन्धु-बान्धवों को ही अपनी सम्पत्ति मान कर अत्यन्त प्रसन्न चित्त होता है, किन्तु किसी देश, राष्ट्र अथवा जाति की सम्पत्ति के विषय में कोई क्या कह सकता है? यथार्थ में

ऐसे देश की सम्पत्ति वे ही मनुष्य जाति रूपी सागर में से मथ कर निकाले हुए उज्वल रत्न हैं, जो अपनी चरित्र रूपी ज्योति से देश के मोहान्धकार का विनाश करते हैं। ऐसे मनुष्य राजनैतिक तथा सामाजिक गुणों से ही परिपूर्ण रहते हैं।

ईश्वर की सृष्टि में अगणित वीर साहसी पंडित और कवि उत्पन्न हो चुके हैं, जिन्होंने अपनी प्रतिभा से इस संसार में अक्षय कीर्ति प्राप्त की है। पूज्य देश भारतवर्ष स्वतः के अध्यात्म-विद्या-वादियों के समाजिक गुणों से परिपूर्ण महाशयों का ही गर्व कर सकता है। इस विभाग में आये हुये महोदयों में से विशेष कर हमारा पूज्य-कवि-सम्राट् अग्रगण्य है। इन सुकवियों में से हमें जिन्होंने शृंगार रस को ही सब कुछ माना है, इतना मूल्य नहिं जितना उन धर्मोपदेशकों का है।

हमारे देश में ही कतिपय कवि ऐसे होगये हैं, जिन्होंने केवल अपनी शक्ति के द्वारा ही अपूर्व-कान्ति का प्रादुर्भाव किया है। शृंगार रस-वादियों से हमें इसलिये विशेष प्रयोजन नहीं, क्यों कि उन्होंने समाज सेवा पर विशेष ध्यान नहीं दिया। अब शेष कवियों में से भी सब से उच्च स्थान कवि-कुल सूर्य, भारत-माता के प्राण, सच्चे हिन्दुत्व-प्रेमी, परम-माननीय, महाकवि गोस्वामि तुलसीदास को मिलता है जिन्होंने अपनी वचनसुधा से करोड़ों 'हिन्दू' नाम धारियों को सच्चा सनातन-धर्मी बना दिया।

प्रतिभा-शाली महाकवि अपने समय का प्रतिनिधि होता है। जन समाज के प्रतिनिधि के समान वह भी समाज की आवश्यकताएं बतलाता है। कवि कल्पना बल से लोगों के सामने एक शाब्दिक-चित्र उपस्थित करता है, जो उस समय की परिस्थिति के अनुसार रहता है। वह चित्र इतना चित्ताकर्षक होता है, कि उसकी ओर सभी को विवश होकर आकृष्ट होना पड़ता है। कवि का वह चित्र नीरव उपदेश और प्रेम का कोड़ा है। वे उपदेश हृदय पर अधिकार कर लेते हैं और उस प्रेम के कोड़े के सामने सब को विवश हो सिर झुकाना पड़ता है। उस समय का स्मरण कीजिये, जब जनसमाज में निर्दयता एक दूसरे छोर पहुंच गई थी, अहंकार की बात ही क्या कड़ी बात कहने में प्राण दण्ड की आज्ञा दी जाती थी, तथा लोग मोहान्धकार में अन्धे हो रहे थे। उसी समय भगवान बुद्ध का आविर्भाव हुआ। भगवान बुद्ध ने जातक कथाओं और उपदेशों के रूप में अपने महान काव्य की सृष्टि की। अनायास, बिना किसी के कहे, उस काव्य ने संसार में नया युग उत्पन्न कर दिया। इस प्रकार जब जब इतिहास की धारा पलटी तब तब कोई न कोई विश्व विख्यात महा-पुरुष अवश्य उत्पन्न हुआ और उसने उस जर्जर धर्मगति की रक्षा की। हमारे चरित्र नायकने कहा भी है,

"जब जब होय धर्म की हानी, बाढ़ै असुर अधम अभिमानी
तब तब प्रभु धरमनुज शरीरा, हरहि सदा भवसज्जन पीरा॥

जिन्हीं भी महाशय के विषय में कुछ कहने के पूर्व, उनके जन्म समय की परिस्थिति, उनका कुल, पितृत्व आदि अनेकों तथ्यों का विवेचन अत्यावश्यक है। जिस समय देश में अशान्ति फैली हुई थी, धार्मिक नौकाएं अज्ञान सागर में डगमगा रहीं थी, मूर्खता अपना विस्तृत साम्राज्य फैलाए बैठी थी, विद्या विवाद के लिये, धन था मद के लिये और शक्ति का उपयोग परपीड़ा के लिये किया जाता

था। क्या ऐसी दशा में कभी कोई बुद्धिमान देश और समाज कल्याण की आशा कर सकता था? इधर इस प्रकार की दशा थी, यहां मुगल बादशाह अपना दबदबा दिखा रहे थे, हिन्दु से मुसलमान बनाये जा रहे थे, और हिन्दुत्व घृणा की दृष्टि से देखा जारहा था। उस समय विचारवानों का हृदय काँप उठा और हिन्दुत्वनाश की भारी आशंका उनके हृदयों पर दौड़ने लगी।

उसी समय महाकवि तुलसी दास का जन्म हुआ। चरित्र नायक का जन्म समय कहीं लिखा नहीं मिलता, परन्तु बहुमत से सम्वत् १५८९ इनका जन्म काल माना जाता है, इसे डा० ग्रिअर्सन भी मानते हैं। इसके विपरीति शिव सरोज में इनका जन्म समय १५८३ माना जाता है। इनके एक शिष्य ने अपने मानसमयङ्क नामक ग्रन्थ में आपका जन्म समय सं० १५५४ माना है और १६८० में आप परमधाम सिधारे इस हिसाब से आप की अवस्था १२७ वर्ष की निकलती है। इतनी अवस्था का होना असम्भव नहीं है। इस प्रकार भिन्न भिन्न विद्वान् आप का जन्म काल भिन्न भिन्न मानते हैं, परन्तु बहुमत से सं० १५८९ ही आप का जन्म काल माना जाता है।

इनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में भी कहीं कोई लिखा प्रमाण नहीं मिलता। कोई कहता है इनका जन्म तारी में हुआ, कोई हस्थनापुर, कोई चित्रकूट के पास हाजीपुर और कोई युक्तप्रदेशान्तर्गत अयोध्या के सान्निकट राजापुर नामक ग्राम इनका जन्म स्थान बतलाता है। इनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में भी लोग कहतेहैं, कि इनके पूर्वज चित्रकूट के पास किसी स्थान में रहते थे। महावीर ने स्वप्न में दर्शनदे उनसे कहा कि तुम बांदा जिलेके राजापुर नामक ग्राममें रहो वहां तुम्हारे एक पुत्र-रत्न उत्पन्न होगा जो सदैव के लिये अपना कीर्ति स्तम्भ खड़ा कर जावेगा। उन्हींकी इच्छा से इनके पूर्वज राजापुर गये और वहीं तुलसीदास जी का जन्म हुआ। राजापुर में आप की कुटी और मन्दिर आदि बने हैं तथा इनका स्मारक भी वहां बनाया जा रहा है। इससे मेरी समझ में इनका जन्म राजापुर ही में हुआ।

गो स्वामी जी ने स्पष्ट रूप से कहीं भी अपने माता पिता का उल्लेख नहीं किया। यह सब लोग मानते हैं, कि इनके पूज्य पिता का शुभ नाम आत्माराम द्विवेदी था तथा पूज्य माता का नाम हुलसी देवी था। नीचे लिखा दोहा इसके प्रमाण में उद्धृत किया जाता है:-

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहत अस होय।
गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय॥

इस दोहे का उत्तरांश रहीम खान-खाना का माना जाता है और शेष गोस्वामी तुलसीदास का। कहते हैं पहिले इनका नाम 'राम बोला' था, गृहत्याग करने पर इनका नाम तुलसीदास पड़ा। डा० ग्रिअर्सन ने अपने तीन दोहों में आप का वंश परिचय किया है। वे दोहे नीचे लिखता है:-

दूबे आमाराम है, पिता नाम जग जान।
माता हुलसी कहत सब, तुलसी के सनमान॥
प्रह्लाद उपास नाम है, गुरु का सुनिए साच।
प्रगट नाम नहिं कहत जो, कहत होय अपराध॥
दीन बन्धु पाठक कहत, ससुर नाम सब कोय।
रत्नावलि तिय नाम है, सुत तारक गत होय॥

इनसे इनके सम्बन्धियों के नाम का परिचय मिलता है कई लोग कहते हैं, कि हमारा भावी महाकवि मूलनक्षत्र में उत्पन्न हुआ इससे ज्योतिष के नियमानुसार अपनी मृत्यु के भय से विचलित होकर माता-पिता ने इनका त्याग कर दिया था। यह बात मानी जा सकती थी, जब कोई ऐतिहासिक प्रमाण मिलता। जो माता पिता अपने पुत्र के लिये अपना सर्वस्व लुटाने को तैयार हैं, क्या वे अपनी मृत्यु के भय से अपने स्नेह स्वरूप बालक का त्याग कर देंगे? इस बात पर विश्वास करना उन पुरुषों का काम नहीं, जो भारतीय माता पिताओं की प्रकृति से परिचित हैं। परन्तु यह मानने में किसी को आपत्ति न होगी कि इन्होंने अपना बालकपन घर में व्यतीत नहीं किया। उन्होंने कहा है:-

तनु तज्यो कुटिल कीट, ज्यों तज्यो मात पिता हूं।

तुलसी दास जी को कई लोग सरयू-पारीण और कई लोग कान्य कुब्ज ब्राह्मण मानते हैं, ऐसी दशा में कुछ निश्चय करना कठिन है आज कल सरयू-पारीण और कान्य कुब्ज इस प्रकार मिल गये हैं कि उनको अलग अलग करना कठिन है। बहुमत से लोग सरयू पारीण ब्राह्मण ही इन्हें मानते हैं।

बाल्यावस्था में माता पिता द्वारा त्यागे जाकर, आप नरहरिदास के आश्रम में पाले-पोसे गये और फिर आप का विवाह आदि हुआ। गुरु का उल्लेख आपने रामायण के प्रारम्भ में किया है:-

बंदऊ गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महामोहतम पुंज, जासु बचन रवि कर निकर॥

गुरु के आश्रम में रह कर वे राम-भक्ति में रङ्ग गये थे, इनका प्रारम्भही ऐसा था, जो भविष्य में चल कर आप को एक उच्च मार्ग पर लेगया इन्होंने सब से पहिले राम-गुण गाथा इन्हीं नरहरिदास से सुनी जैसा कहा भी है:-

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहीं तस बालपन, तब अति रहेउ अचेत॥

यह सब लोग मानते हैं कि इनका विवाह दीन-बन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था जो अत्यन्त सुन्दर और चतुरा थी। परन्तु तुलसी चरित में लिखा है कि इनके तीन विवाह हुए थे। तीसरा विवाह कंचनपुर ग्राम के उपाध्याय लक्ष्मण की प्रसन्न-वदना कन्या बुद्धिमती से हुआ इसी के उपदेश से गोस्वामी जी विरक्त हुये थे, तुलसी चरित्र में लिखा है:-

तृतीय विवाह कंचनपुर माहीं।
सोय तिय बच विदेश अवगाही॥

गोस्वामी जी रत्नावली के प्रेम में अत्यधिक आसक्त थे। पहिले जो भक्ति में लवलीन हो रहे थे, उसी भक्ति का प्रभाव आज रत्नावली के प्रेम की ओर उमड़ा। रत्नावली पर उनका इतना अधिक अनुराग बढ़ा, कि वे उससे एक क्षण भर के लिये विलग होने के लिये भी सहमत नहीं थे। एक बार रत्नावली अपने भाई के साथ अपने पिता के यहां चली गई। गोस्वामी जी जब स्नान ध्यान से लौटे, तब उन्हें यह समाचार विदित हुआ। बस क्या था! जैसे खड़े थे वैसे ही रत्नावली के पास चल खड़े हुए। प्रेम में इतने उन्मत्त थे, कि उनको यह भी स्मरण न था कि मैं किस प्रकार और कौन से रास्ते से जा रहा हूं। रात्रि का समय था, गोस्वामी जी अचानक रत्नावली के पास जा पहुंचे। रत्नावली इन्हें देखते ही अत्यन्त

आश्चर्यान्वित हुई। थोड़ी देर तक सोचने के पश्चात् वह बड़ी गम्भीरता पूर्वक बोली:-

लाज न लागत आपको, दौरे आयेहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहहुं मैं नाथ॥
अस्थि चरममय देह मम, तामे जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम मंह, होत न तो भवभीति॥

हे नाथ! मेरे प्रेम के लिये आपने लोक लाज त्याग दी और रात्रि के समय आप यहां दौड़े आये। इतना मोह! किसके लिये? इस अस्थि पिंजर के लिये। अहा! नाथ यदि इतना प्रेम जगद्वन्द्य श्री रामचन्द्र में होता तो कितना उत्तम और शान्ति देने वाला होता। रत्नावली का इतना कहना था, कि उनके हृदय में एक नवीन ज्योति उत्पन्न हुई और ईश्वरीय भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। रत्नावलि को सदा के लिये तिलाञ्जलि देकर गोस्वामी जी बोले रत्नाली! रत्नावली!! बस हो चुका, अब यह तुलसी दास तुम्हारा नहीं रहा लो यह जाता है। इसे क्षमा करना इतना कह कर वे वहां से चल पड़े रत्नावली पाषाण प्रतिमा की तरह अचल खड़ी रही। उससे कुछ कहते न बना। वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गई,। गोस्वामी जी वहां से चल कर काशी पहुंचे। यहीं पर इन्होंने विद्याध्ययन किया और इसके पश्चात् कुछ समय तक तीर्थाटन करते रहे। गृह छोड़ने के पीछे रत्नावलि ने यह दोहा गोस्वामी जी को लिख भेजा:-

कटि की छीनी कनक सी, रहसि साखिन संग सोय।
मोहि कटे की डर नहीं, अनत कटे डर होय॥

इसके उत्तर में गोस्वामी जी ने लिखा:-

कटे एक रघुनाथ संग, बांधि जटा सिर केश।
हम तो चाखा प्रेम रस पत्नी के उपदेश॥

वृद्धावस्था में एक समय तुलसीदास भ्रमण करते हुए अपने ससुर के यहां अपरीचित दशा में ठहर गये। रत्नावली ने उन्हें पहचान लिया और अपने साथ ले जाने को कहा तब गोस्वामी ने उसे साथ लेना अस्वीकार कर दिया तब उसने कहा:-

खारिया खरी कपूर सों, उचित न पिय तिय त्याग।
कै खारिया मोहि मौल के, अचल कछुह अनुराग॥

यह सुनते ही तुलसीदास ने अपने झोले की सब वस्तुएं ब्राह्मणों को बांट दीं।

कुछ लोगों का यह मत भी है कि तुलसीदास का विवाह नहीं हुआ, क्योंकि उन्होंने विनय पत्रिका में लिखा है:-

"ब्याह न बारेकी जाति पांति न चाहत हौं।"

यह सम्भव नहीं हो सकता यह उपदेश तो उन्होंने वैराग्यावस्था में किया है। कई लोग कहते हैं कि जब ये साधु के यहाँ पाले गये तब इनका विवाह कौन करेगा, क्योंकि साधु लोग जाति पाति तो मानते ही नहीं। संभव है कि इनके गुरु ने इन्हें ब्राह्मण समझ उस रीति से न पाला हो। गोस्वामी जी किसी एक स्थान में बहुत समय तक नहीं रहे यहाँ वहाँ विचरण करते ही रहे, एक बार जब वे वृन्द्रावन में आप कृष्ण मन्दिर में गये यहाँ इन्होंने कृष्ण-मूर्ति देख यह दोहा कहा:-

कहा कहौं छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवै, धनुषबाण जब हाथ॥

कहते हैं, तुलसीदास ने जिस मूर्ति को अपना आराध्य माना था, वही मूर्ति उनके सामने प्रकट हुई। इन्होंने प्रणाम किया। इस प्रकार की बहुत कथाएं ऐसी हैं जिन पर लोगों का विश्वास

नहीं होता परन्तु प्रतिभा-सम्पन्न मनुष्य क्या नहीं कर सकता ?

गोस्वामी जी अधिक समय तक शीतल निर्मल-सलिल मन्दाकिनी में तरंगित होने वाली पुण्य-प्रकाशिका काशी में रहे। गो स्वामी जी जैसे विद्वान् थे वैसा ही मनोहर और मोक्ष-धाम उनका आश्रम था। सामने देव-नदी गंगा अपनी मधुर कल कल ध्वनि से लोगों को प्रसन्न कर रही है, नदी ने तुलसीदास के आश्रम से इतना प्रेम कर लिया है, कि वह भी उस आश्रम के चरण-चुम्बन कर रही है। पास ही अस्सी-नदी, गंगा में मिल कर समुद्र की ओर पर्यटन कर रही है, कैसा शान्त स्थान है। शहर के बिलकुल अन्त में आश्रम है, जिससे लोग अपनी व्यावहारिक बात चीत से उनके भगवत् भजन में विघ्न नहीं डालते। यह स्वर्ग को लज्जित करने वाला आश्रम आज कल जीर्णावस्था में है। गोस्वामी जी इसके अतिरिक्त गोपाल मन्दिर में प्रह्लाद घाटपर, और संकटमोचन आदि स्थानों में भी काशी में रहते रहे हैं। संटकमोचन में तो अभी तक उनके हाथ की स्थापित महावीर हनूमान् की प्रतिमा है।

अपूर्ण

आह्वान

[ले० श्री ब्रजनाथ जी भट्ट-विशारद]

जय श्यामसुन्दर पद्मलोचन अघ विनाशक हे हरे।
आनन्द कन्द मुकुन्द प्रभुवर दीनजनधन हे हरे॥
जय जय परात्पर व्यक्त अरु अव्यक्त भूधर हे हरे।
जय भव्य-नव्य पुराण अज निर्भर अनार्दन हे हरे॥
जय ज्ञानमय अनन्दमय हे शान्तिमय रसमय विभो।
जय दुःखनाशक शान्तिदायक सच्चिदानन्द प्रभो॥
जय पूर्ण पुरुषोत्तम सनातन दीनबन्धु दयालु हे।
कन्दर्प दर्प तुरन्त हर हरि नन्दसूनु कृपालु हे॥

प्रभु पतित पावन पापमोचन भक्तिवरद प्रसिद्ध है।
हरि भवविमोचक दीनबन्धु अजनाथ एक प्रसिद्ध है॥
हम पतित भव भयभीत हैं त्रयताप से सन्तप्त हैं।
सन्त्रस्त हो हम शरण मांगें आप एक शरण्य हैं॥

हे मनमानस हंस अब फिर एक बार पधारिये।
हम दीन दुखियों पर दया एक बार निहारिये॥
सन्ताप संकुल हो उठे हैं अभय हम को दीजिये।
निज जन्मभूमि स्वदेश की सुधि आज हे हरि लीजिये॥

भक्त की भावना

[ले० श्री लालचन्द जी दस्तगी]

उपनिषद् में कहा है, जिस भक्त को भगवान् चाहते हैं, जिस पर भगवान् अनुग्रह करते हैं, वही उन्हें पाते हैं, ऐसे कृपापात्र पुरुष पर अपने आप को परमात्मा प्रकट करते हैं, अपने भक्त को ही भगवान् अपना सौम्य तेजोमय रूप दिखाते हैं। भगवान् को प्राप्त करके भक्त शोक को तरजाता है पापको पार करजाता है। ऐसा भक्त हृदय की अज्ञान आदि ग्रन्थियों से छुट कर अमृत होजाता है। बिना भगवान

को जाने जो वर्षोंतक होम करता है भजन करता है और तप तपता है वह नाशवान् होता है। जो मनुष्य भगवान् को न जानकर उनकी आराधना न करके इसलोक से मर कर जाता है वह दीन है उसपर तरस आना चाहिये कि उसने सारा जीवन व्यर्थ खोया। जो भक्तजन भगवान् की उपासना करता है और आराधना करके भगवान् को जानकर इसलोक से मर कर जाता है वही ब्राह्मण, वही परमार्थ का ज्ञाता है। इसी जन्म में यदि भगवान् को जानलिया तो सत्य है, सफलता है यदि यहां न जाना तो महाहानि है, जन्म निष्फल है जो भक्त ब्रह्म को अविनाशी, ज्ञान स्वरूप और अनन्त जानता है तथा हृदय की गुफा के परम आकाश में छुपा हुआ जानता है. वह भक्त उस ज्ञानमय ब्रह्म के साथ सारे मनोरथों को भोगता है वह सारे इष्ट फलों को पालेता है। ऐसी अवस्था में जब उपासक सारे प्राणियों को परमात्मा के और सब प्राणियों में परमात्मा को विद्यमान् जानता है तो फिर इस सत् ज्ञानके होने के पश्चात् कीसी से भी घृणा नहीं करता। परमेश्वर का भक्त साथ में भगवान् का प्रकाश देखता हुआ ऊंच नीच की भावना छोड़ देता है ऐसे उपासक की दृष्टि में सारे प्राणी आत्मा दीखते हैं। आत्मतत्व के प्रतीत होने पर उस ब्राह्मी अवस्था में एकत्व को—एक भगवान् को देखने वाला भक्त फिर शोक और मोह नहीं करता। भगवान् के जानने पर फिर भक्त से अशुभ कार्य नहीं होने पाता, वह अमृत होजाता है।

भक्त का जीवन भावमय है। भक्त भगवत् भावों से भरपूर रहता है। भक्त के लिये भगवान् से बढ़कर संसार भर में अन्य कुछ भी नहीं। भक्त को भगवान् पुत्र से प्रिय, धन से प्रिय, सम्पत्ति से प्रिय अन्य सब से प्रिय होता है। भक्त की भावना में निरंतर भगवान् की झलक, उनका सौन्दर्य, उनकी शोभा, मंगलम्, मूर्ति विराजमान् रहती है। भक्त अपने भगवान् का परम कल्याणकारी शिवरूप में स्मरण करता है और साथ ही अपने प्रेम पूर्ण हृदय में भगवान से अधिक किसी को सुन्दर भी नहीं मानता। शिवम् सुन्दरम् उसका ध्येय होता है।

भक्त ही प्रेमी हो सका है। अन्य सब मोहको प्रेम कहते हैं और नकली चीज को असली के स्थानमें लिये फिरते हैं। साधारणजन असली मोती और नकली मोती को नहीं पहिचानते। इसी प्रकार भक्त के सिवा अन्य जन मोह में फंसे हुए अपने आप को ही बुद्धिमान् और विवेकी मानते हैं। परख तब होती है जब उनकी कोई ऐसी चीज़ जिसमें उनका मोह होता है उनसे अलग की जाती है तो वे चिल्लाते हैं। भक्त का प्रिय कभी नष्ट नहीं होता क्योंकि उसका अनन्य प्रेम अपने भगवान् पर है और भक्त वत्सल भगवान् अविनाशी हैं।

मुझे विश्वास है कि कर्मयोगी ही भक्त होसका है भगवद्गीता अ० २० और अ० १२‡ का

@जब मनुष्य मनमें उठती हुई सभी कामनाओं का त्याग करता है और आत्मा द्वारा ही आत्मा में संतुष्ट रहता है, तबवह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। दुःख से जो दुःखी न हो सुख की इच्छा न रखे और जो राग, भय और क्रोध से रहित हो वह स्थिरबुद्धि मुनि कहलाता है। सर्वत्र राग रहित होकर जो पुरुष शुभ या अशुभ की प्राप्ति में नहीं पड़ता है न शोक करता, उसकी बुद्धि स्थिर है। गी० अ० २—५५,५६,५७

‡जो प्राणिमात्र के प्रति द्वेष रहित, सब का मित्र, दयावान, ममताहित, अहंकार रहित, सुख दुख में समान

विचार करने से यह भेद स्पष्ट होजाता है। जो अवस्था स्थित प्रज्ञकी कहीहै वही भक्त की कही है।

निरन्तरात्मिका बुद्धि द्वारा कर्तव्य करना और भरसक यत्न करके कर्तव्य पालन करते हुए परिणाम भगवान् के ऊपर छोड़ देना ही अनिवार्यता है, यही कर्म योग है।

यजुर्वेद की प्रार्थना—

इतं इत्थं मामोक्ते संदृशिन्जीयासम।
ज्योक् संदृशि जीव्यासम् ॥

हे शक्तिमान! मुझे शक्ति दो कि मैं आपको देखता हुआ जी सकूं, आपको देखता हुआ जी सकूं

यह प्रार्थना भक्त का हृदय दिखा रही है। भक्त को सिवाय भगवान के देखने के अन्य इच्छा हो नहीं। ऐसा जीवन बहुत कठिन है। आत्मबल के बिना ऐसा जीवन संभव हो नहीं इसीलिये भगवान् से शक्ति की भावना की गई है। एक भक्त एकबार गाता हुआ सुना गया:—

तुम संग लागि रहे मेरी प्रीत।
छिन भर होय छवि न न्यारी, चित में रहो सद चित्रित ॥
चित्रित अन्तर अङ्ग अङ्ग में हो रही अब उस रीत।
हृदय नाथ! नित रामनाम हनुमंत भक्त अंकित ॥
तुम संग लागी प्रीत चाहे हो अब सब जग विपरीत।
मेरे तो तन मन धन जीवन सब तव चरणन अर्पित ॥
प्राण बीन के तार बजाए सुनाए विवेक संगीत।
तान सांचि गलतान बनालो, करो जन्म सुफलित ॥

ऐसी मार्मिक याचना सच्चे भक्त के हृदय से ही निकल सकती है। इसमें मोह ढूंढे भी नहीं मिलता। भक्त अपनी जिम्मेदारी जानता है। उसे पता है कि भगवान् से प्रेम करने से संभव है जगत् विपरीत हो जाय, पर उसने अपने आपको भगवत् अर्पण कर दिया है, और वह किसी की परवाह नहीं करता। वह तो केवल यही चाहता है कि उसका जन्म तब सफल हो जब श्रीहनुमान् जी के अनुसार अंग अंग में भगवान् का नाम अंकित मिले। और भगवान् की सुन्दर छवि उसके चित्त में सदा चित्रित रहे।

भक्त के अन्दर यह दृढ़ विश्वास होता है कि भक्तवत्सल भगवान् का सहवास, उनका निरंतर दर्शन यही जीवन का अन्तिम ध्येय है और यह उसे प्राप्त है। इसलिये उसके लिये संसार में कोई मनोरथ शेष नहीं। भक्त के अन्दर प्रेम की निरंतर धारा बहती है जिसमें पाप और प्रलोभन सब बह जाते हैं उन का उस पर कुछ भी कुप्रभाव नहीं पड़ सकता। भगवान् की भक्ति में रत कर्तव्य परायण पुरुष सदैव आनन्दित रहता है। चिंता उसके मन को दुःखी नहीं करती। उसे यह निश्चय हो जाता है कि भगवत् अर्पण कर्म करने पर भगवान् उसका योग और क्षेम स्वयं करते हैं। भक्त होना बहुत कठिन है किन्तु भक्त कहलाना बहुत सुगम है।

भक्त होने के लिये अपनी बुद्धि को भगवान् की शक्ति द्वारा प्रेरित करना होता है। यही तो विचार धारा गायत्री मंत्र में स्पष्ट है और यही गायत्री मंत्र की विशेषता है। जब बुद्धि भगवान् से

क्षमावान, सदा संतोषी योगयुक्त इन्द्रियनिग्रही और दृढ़ निश्चयी है, मुझ में जिसने अपनी बुद्धि और मन अर्पण किये हैं ऐसा मेरा भक्त मुझे प्रिय है जिससे लोगों को उद्वेग नहीं होता, जो लोगों से उद्विग्न नहीं होता, जो हर्ष, क्रोध, ईर्ष्या, भय, उद्वेग से मुक्त है, वह मुझे प्रिय है।

गी० अ० १२-१३, १४, १५

प्रेरित होकर कार्य करती है तो परिणाम आनन्द होता है। क्लेश, मलीन वासना, तृष्णा आदि विकारों को फिर अन्तःकरण में स्थान नहीं मिलता। हृदय में आनन्द भेरी निरन्तर बजा करती है। और भक्त उस की ध्वनि में मस्त रहता है। नित्य नूतन उत्साह उत्पन्न होता है, चिंता तो होती ही नहीं और भक्त आत्मवान् होने के कारण अपने शरीर पर पूर्ण सत्व रखता है। भक्त भगवान् के भरोसे अपने आप को नित्य ऊँचा उठाता है, गिराता नहीं, वह अनायास संयम में अपने आपको समर्थ पाता है। उसके चरित्र में खिचावट नहीं रहती। सब कार्य बिना आलस्य और प्रमाद करके पूर्ण निद्रा प्राप्त करता है। सुख और शान्ति मानो सदैव उसके समीप निवास करती हैं। यह सब क्यों होता है, क्योंकि भगवान् ने उसे अपना लिया है। और अब उसके जीवन का नियंत्रण भगवान् स्वयं रखा रहे हैं। भगवान् पर श्रद्धा पूर्वक विश्वास करने से आत्मबल बढ़ता है। आत्मशक्ति का पूर्ण विकास होता है और पुरुष बड़े से बड़े कार्य सहज में ही करलेता है। भक्ति में विपुल शक्ति है। भक्त के ऊपर भगवान् का हाथ सदैव रहता है। उसका यश बढ़ता है और उसके द्वारा भगवान् का अपना यश महान् होता है। भक्त और भगवान् का प्रेम अकथनीय है यह रहस्य वाणी के अगोचर है।

भक्ति का प्रसाद विमल प्रेम है निर्भयता है, सरलता है और क्षमाभाव है। भक्त की जीवनचर्या भ्रम और संशय रहित हुआ करती है! भक्त के अन्तःकरण में एक दिव्य प्रकाश रहता है वह उसे मोह अंधकार से अलग रखता है प्रलोभन में फंसने नहीं देता और सत्य मार्ग भक्त के आगे स्पष्ट कर देता है। भक्त ही यज्ञमय जीवन व्यतीत कर सकता है, शेष सब लोग स्वार्थ वश अपने लाभ के लिये दूसरे की हानि करने में संकोच नहीं करते! भक्त में भगवान् के गुणों की आभा दिखाई देती है और हो भी क्यों न? निरन्तर के सहवास से अवश्य अन्तःकरण पर प्रभाव पड़ता ही है। भक्त का भगवान् के साथ सम्बन्ध प्रेम का हुआ करता है। भक्त कहता है:-

तेरे अटल प्रेम बन्धन में मुझे मुक्ति की चाह नहीं।
एक अपांग दृष्टि हो तेरी फिर कुछ भी परवाह नहीं॥

भक्त की इच्छा केवल यही रहती है कि भगवान् का उस से प्रेम रहे और उस की श्रद्धा भगवान् पर बनी रहे।

विषयों से यदि कोई अतीत हो सका है तो वह भक्तियोग द्वारा ही। भक्ति रस में तृप्त होकर भक्त को हर्ष, विषाद, सुख दुःख आदि द्वन्द्व नहीं सताते। भक्त ही द्वन्द्वातीत हो सकता है। भक्त का जीवन निरंतर उन्नति का जीवन है प्रगति का जीवन है, सफलता का जीवन है। यदि कोई मनुष्य आलसी है प्रमादी है, केवल शरीर के लिये जीता है तो वह भक्त नहीं, वह भक्त की नकल हो सकता है।

भक्ति केवल गीत गाने, लंबी लंबी प्रार्थनाएं करने, बड़े बड़े शास्त्रीय कथन सुनने सुनाने मात्र से नहीं जाग्रत होती। भक्ति के प्रवेश के लिये आतुरता चाहिये। यदि हम भगवान् के दर्शन के उतने ही आतुर हैं जितने कि हम स्वच्छ वायु के अपने शारीरिक जीवन निर्वाह के लिये है तो भक्त वत्सल भगवान् अवश्य हमें अपना स्नेह का पात्र बनाएंगे। जब तक हम भगवान् के सहवास के लिये स्वच्छ वायु की आवश्यकतानुसार व्याकुल नहीं होते तब

तक हमें भक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। भक्ति की प्राप्ति के लिये हमें अपने कर्तव्य एक विशेष दृष्टिकोण से करने होंगे। अनासक्ति भाव से, निश्चय से, पूर्ण श्रद्धा और रुचि से किये हुए कार्य ही मनुष्य का कल्याण करते हैं। ऐसी भावना से किये हुए कार्य मनुष्य को मुक्त कर देते हैं और मनुष्य कार्य करता हुआ भी निर्लेप रहता है। वह भक्ति, भक्ति नहीं आसक्ति है जो हमें आलसी और निकम्मा बना देती है। ऐसी भक्ति लालसा कही जा सकती है और मनुष्य को मोह, फांस में जकड़ देती है। जहाँ मोह है वहाँ प्रेम नहीं और जहां प्रेम के लिये हृदय तैय्यार नहीं उस शून्य स्थान में भगवान् के दर्शन एक मृगतृष्णा है।

हे विभो! अपना प्रकाश हम सब के अन्दर करो, जिससे कि हमें श्रेय और प्रेम में विवेक हो और हम अपने अन्तिम ध्येय आप पूर्ण भगवान् को प्राप्त हो सकें। ओ३म् शम्।

माता पुत्री संवाद।

[ले० श्रीमती बहिन जयदेवी जी]

पुत्रिः- माता जी! मेरे मन में चिरकाल से एक शंका है. आज सौभाग्य से ऐसा अवसर प्राप्त हुआ है जो आप से समाधान करा कर कृतार्थ होऊंगी।

हे माताजी! सुर दुर्लभ जो कि मोक्ष का धाम है ऐसे उत्तम मनुज तन को पाकर, क्या मनुष्य का यही कर्तव्य है, कि भोग विलासों तथा खाने पीने में ही आयु को समाप्त कर मृत्यु को प्राप्त हो जाय! प्रत्यक्षता से तो ईश्वर ने मनुष्य को अतिथि लक्षण रूप से बनाया है। यदि खाना, पीना सोना, जागना और सन्तान पैदा करना ही मनुष्य का धर्म होता, तब तो और पशु इत्यादि योनियों से इसमें कोई विलक्षणता नहीं होना चाहिये थी। परन्तु ये विलक्षणता ही सूचित करती है कि इस मनुष्य का कोई विशेष कर्तव्य है क्योंकि ईश्वर का कोई कार्य, कर्म कभी भीनिष्प्रयोजन नहीं होता। धन्य है उस ईश्वरकी महिमा और कारीगरी कि जिसने ऐसा अद्भुत् अनूपम शरीर बनाया, परन्तु ऐसा अद्भुत् और विचित्र शरीर बनाने में उसकी कोई न कोई विशेष इच्छा अवश्य होगी!

माताः-हे पुत्रि! तेरे प्रश्न अति सुशोभन हैं। संसार वन से पार करने को सेतु रूप हैं। नहीं! पुत्रि ये बात नहीं है, कि और पशु आदियों से मनुष्य में कोई विशेषता नहीं हो मनुष्य जीवन का तो यह उद्देश है कि इह लोक में जीव निरन्तर पुरुषार्थ करके अन्त में मुक्ति गृह में प्रवेश करे। मुक्ति प्राप्त करना ही जीव का अपना कर्तव्य है। मनुष्य जन्म प्राप्त करके जिन मनुष्यों ने हरि की भक्ति नहीं की उनका जन्म होना ही वृथा है। खाना पीना इत्यादि तो मनुष्य और पशुओं में समान ही है। इसमें कोई विशेषता नहीं है।

पुत्रिः- माता जी! कहो तो उसके साधन कैसे मिल सकते हैं मुक्ति, वस्तु कौन सी ऐसी सुख कर, क्या फिर मिलने की है युक्ति।

माताः- सुनो पुत्रि ये बात गहन है, फिर भी कहती हूं कुछ भेद। श्रवण मनन, और निदध्यासन, साधन तीन बताते वेद। ज्ञानयुक्त वैदिक कर्मों

को जग में जो कर जाता है धन्य जीव है वही सदा जो ईश्वर के गुण गाता है। और मुक्ति क्या है बतलाऊं वाणी की यह नहीं सामर्थ, योग ध्यान के करने वाले मुनिजन समझे इसका अर्थ। किन्तु पुरुषार्थ में ही है, परम पिता का हो आनन्द, मग्न, मोद से जिनमें रह कर जीव सुखी होता स्वच्छन्द।

(और भी कहा है कि:-

है पुरुषार्थ रूप में हरि ही, इनको त्यागे भद्र कहां।
तट का कर्कट क्यों छोड़ेगा, देगा झाल समुद्र जहां॥

अब मैं तुझको पुरुषार्थ का स्वरूप समझती हूं ध्यान देकर सुन, पुरुषार्थ दो प्रकारका है। एक सांसारिक। दूसरा पारमार्थिक। सांसारिक पुरुषार्थ तो जीवको नीचे अर्थात् जन्म मरण के चक्र में घुमाने वाला है। जैसे कि द्रव्य, पुत्र, दारा के लिये पुरुषार्थ, मान प्रतिष्ठा के लिये पुरुषार्थ, अन्य की हानि करने में पुरुषार्थ, इस लोक के राज सुख के लिये पुरुषार्थ, परलोक सुख की इच्छा में पुरुषार्थ, कर्म करने में पुरुषार्थ, जिन कर्मों से दैवता अनुकूल हों, उन कर्मों के करने में पुरुषार्थ यक्ष राक्षसों को प्रसन्न करने में पुरुषार्थ, दूसरे के धनों को अपनाने का पुरुषार्थ, सर्व पर अपना अधिकार रखने का पुरुषार्थ, ऋद्धि सिद्धि को सिद्ध करने का पुरुषार्थ, नाना जप तप करने का पुरुषार्थ कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत करने का पुरुषार्थ, मोहन, मारण उच्चाटन, मन्त्र सिद्ध करने का पुरुषार्थ, सन्तान पैदा करने का पुरुषार्थ, अनित्य शरीर के सदा रहने का पुरुषार्थ, इन्द्रियों को पुष्ट करने का पुरुषार्थ, आकाश में उड़ने का पुरुषार्थ, लोक में ऊंचे पद की प्राप्ति में पुरुषार्थ, योग हठ योग करने का पुरुषार्थ, सकाम तीर्थ व्रत करने का पुरुषार्थ, फलकी इच्छासे दान यज्ञ करने में पुरुषार्थ इत्यादि २ ये सब पुरुषार्थ जीव को बन्धन में डालने वाले हैं। मोक्ष के लिये जो पुरुषार्थ है वही परम पुरुषार्थ है। वही परम साधन है। अर्थात् शरीर से आदि लेकर जितना भी ब्रह्मांड है सब अनित्य, नाशवान, परिणामि, क्षण भंगुर, माया मय, परिवर्तन शील, दुःख रूप, शोक, मोह, उत्पन्न करने वाला चौदह लोक सातों भुवन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश लोक और लोक पाल, इन्द्र, वरुण, कुबेर और प्रजापति, स्त्री, पुत्र, राज्य, धन, शत्रु, मित्र, इह लोक अपर लोक अर्थात् ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त यावन्मात्र जो भी कुछ जगत् यानी दृश्य पदार्थ है सब अनित्य, मिथ्या है। एक परमात्मा ही नित्य सत्य अखंड एकरस है सच्चिदानन्द, निर्विकार, अजन्मा अनादि, सब के हृदयों में विराजमान अपनी सत्ता स्फूर्ति से सर्व जगत् का प्रेरक, भ्रकुटी मात्र से सर्व जगत् की उत्पत्ति स्थिति और लय करने वाला है। न उसका आदि है न अन्त है न मध्य है। सब में व्यापक और सब से न्यारा है। जैसे कमल का पत्र जल में रह कर भी जल से न्यारा है अर्थात् जलको स्पर्श नहीं करता। तैसेही आत्मा का संसार में रह कर भी संसार से स्पर्श नहीं होता। सबका अन्तर्यामी और प्रेरक होकरभी जीवों के पाप, पुण्य से लिप्त नहीं होता। सब की आंखों से देखता हुआ भी नहीं देखता, सब के कानों से सुनता हुआ भी नहीं सुनता, सबकी जिह्वा से स्वाद लेता हुआ भी स्वाद नहीं लेता। सब की नासिका से गन्ध सूंघता हुआ भी गंध नहीं सूंघता। सब के हस्तों से काम करता हुआ भी काम नहीं करता। सब के पावों से चलता हुआ भी आप नहीं चलता। अर्थात् सब

जीवों में रमण करता हुआ भी रमण नहीं करता। जो सूर्य चन्द्र को प्रकाशित कर रहा है। उसको यह सूर्यचन्द्र प्रकाशित नहीं कर सकते। वो सब को जानता है परन्तु उसको कोई नहीं जान सकता। इस प्रकार का विवेचन करने का पुरुषार्थ ही परम पुरुषार्थ है, यही मनुष्य जीवन में पुरुषार्थ परम कल्याण कारक है। शरीर भिन्न है आत्मा अभिन्न है। शरीर जड़ है आत्मा चेतन है। शरीर ६ उर्मियों वाला है। आत्मा जन्म मृत्यु से रहित है, शरीर ही जन्मता है, शरीर ही मरता है। आत्मा असंग निर्विकार है। शरीर मल मूत्र का भंडार अशुद्ध है। आत्मा मल मूत्र से रहित शुद्ध है। शरीर पंच भूतों का समूह, तमोगुण प्रधान संघात का बना हुआ दृश्य है। आत्मा असंघाती गुणों से रहित दृष्टा सब का साक्षी, माया मोह से परे है। शरीर भूतों का कार्य है। आत्मा किसी का कार्य नहीं। सबका कारण है, ऐसे आत्मा के जानने में पुरुषार्थ करना चाहिये। यही मनुष्य देह धारी का कर्तव्य है. जीव अपने शुद्ध स्वरूप को भूल कर, अविद्या अज्ञान में फंस कर, शरीर के सुख में सु-, दुःख में दुःख मान कर वृथा ही दुःखी सुखी होता है। पुत्र, मरा, तो कहता है हाय मैं मर गया। धन के नष्ट होने पर हाय मैं नष्ट होगया मेरा सब कुछ गया। ऐसे शोक मोह में डूब कर अशान्ति को प्राप्त होता है। और जब निष्काम कर्म द्वारा अन्तःकरण को शुद्ध करके अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इन पाँचों अविद्या के क्लेशों को जीत लेता है फिर श्रीगुरु की शरण जाकर अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करता है तब सुखी होता है. और जन्म मरण के बन्धनों से छूट जाता है। इसी प्रकार का विचार करना परम पुरुषार्थ है। जगत् मिथ्या है, ब्रह्म ही एक सत्य है। जितना भी दृश्य है सब मिथ्या और झूठा है। केवल एक मेरा आत्मा ही नहीं नाश होने वाला है और वही मेरा शुद्ध स्वरूप है। इसी प्रकार के विचार तथा श्रवण मनन निदिध्यासन करने को ईश्वर ने यह अद्भुत् शरीर बनाया है। और पशु आदि योनियों से इसी कारण इस मनुज शरीर को विलक्षणता प्रदान की है कि इनमें बुद्धि विशेष होने से अपनी लाभहानि को विचार कर इच्छा रहित होकर प्रवृत्ति करे और शुभ कर्मों में प्रवृत्ति द्वारा ही मनुष्य ईश्वर भक्ति करने के योग्य होता है। अशुभ कर्मों से दूर रह कर अनन्य होकर ईश्वर भक्ति करना ही मुक्तिगृह में प्रवेश करना है।

हे पुत्री! अपनी लीला तथा अपने को अपरोक्ष कराने के लिये ही ईश्वर ने यह उत्तम मनुष्य शरीर बनाया है और जीव का अपना शुद्ध स्वरूप है। अनादि काल से जीव अपने निज रूप को भूल कर, संसार वन में भटकता हुआ दुःखी हो रहा है, अनेकों प्रकार की आधि व्याधि से व्यथित देख करुणाकर हरि भगवान् ने, करुणा करके जीव को अनुग्रह पूर्वक मोक्ष का द्वार रूप यह शरीर दिया। यही उसका परम प्रयोजन है कि जिस किसी प्रकार हो सके जीवकी बन्धन से विनिर्मुक्ति हो, और अपने धाम मोक्ष में प्रवेश करे; जो नर नारी उसकी आज्ञा का पालन नहीं करते, वे सदा संसार रूपी दावानल से संतप्त रहेंगे, उनको कभी शान्ति सुख मिलने वाला नहीं। शोक है, उन मनुष्यों के लिये जो जगत् में आकर ईश्वर की आज्ञा का पालन नहीं करते।

पुत्री ! वही जीव धन्य हैं धन्य हैं जो नित्य प्रेम से ईश्वर के गुणों का गान करते हैं।

पुत्रीः– माताजी ! जब कि पार्मार्थिक उन्नति में इतना महान आनन्द है तब फिर जीव अपने रूप को कैसे भूल गया, और इस अनित्य संसार में फंस कर इसी को सच्चा कैसे मानने लगा ? क्यों नहीं ईश्वर की आज्ञापालन करता ! इसका भी तो कोई कारण बताइये।

माताः– पुत्री इसी पर तुझे एक भोले मुसाफिर का दृष्टान्त सुनाती हूं ध्यान देकर सुन।

एक भोला मुसाफिर अपने घर से बहुत से जवाहरात लेकर परदेश को चला कि इन जवाहरातों से बहुतसी अच्छी २ चीजें खरीद कर लाऊंगा। परन्तु दैवयोग से चलता २ एक भाँग के बन में पहुंच गया। प्रातःकाल का समय था और उस को दांतन करने की आवश्यकता थी। उसने एक डाली तोड़ दांतन करना प्रारम्भ किया ज्योंही उसने दांतुन की कि नशे में बेहोश होने लगा जब कि नशे में पूरा बेहोश हो गया तब पागलों की भांति शहर में घूमने लगा, शहर के लड़कों ने उसको चिढ़ाने के लिये कंकड़ मारनी प्रारम्भ की। अब मुसाफिर के पास कुछ और तो था ही नहीं, वे लाल थे जिन्हें अब इस दशा में कंकड़ समझ कर लड़कों के मारने लगा। दोनों ओर से खूब वर्षा हुई, लड़के तो उसके लालों को बड़ी खुशी के साथ उतावली से लेने लगे और कंकड़े भी उतावली से फैंकने लगे। इधर मुसाफिर के ज्यों ही लाल समाप्त हुये त्यों ही उसका नशा भी उतर गया, नशा उतरते ही उसे होश आया कि हाय ! मेरे लाल कहां गये, क्या इन कंकड़ों के बदले मैंने लाल फैंक दिये, हा शोक ! बड़ा खेद हुआ, अब क्या करूं कहां से अब उन लालों को लाऊं, ऐसे विचार कर पछाड़ें खाने लगा। परन्तु अब क्या था लाल तो लड़के लेकर चलते बने। क्या वे लड़के मेरे लाल ही लेने को आये थे, मुझे क्या होगया, जो अपने बेशकीमती लाल यों ही फैंक दिये। लड़कों को कहां ढूंढ़ कहीं पता भी तो नहीं लगता। अब घर पर क्या मुंह लेकर जाऊंगा। घर वाले क्या कहेंगे कि क्या २ सौदा लाये। तब क्या कहूंगा ! हा ! मैं तो इधर का रहा न उधर का क्योंकि लालों बिना यहाँ भी कुछ व्यापार नहीं कर सकता, न घर पर ही जा सका हूं। बस अब तो बेकार हो गया। इस समय सिवाय पछताने के और कोई उपाय उस भोले के पास नहीं था।

पुत्री ! अब इसका दार्ष्टान्त इस प्रकार है, यह भोला मुसाफिर ही जीवात्मा है। घर इसका परमात्मा का धाम है, जवाहिर इस जीव के स्वांस रूपी लाल हैं। यह जीव सांस रूपी लालों को लेकर संसार में आता है कि इस अपने अमूल्य जीवन ही से धर्म का सौदा खरीद कर लाऊंगा। गर्भ में ईश्वर से प्रार्थना करता है कि हे दयामय प्रभो ! अब तुम मेरे ऊपर अनुग्रह करो और इस अन्ध कूप से शीघ्र पार करो। मैं तुम्हें कभी न भूलूंगा निरन्तर तेरी आज्ञाओं का पालन करूंगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा करके जीव बाहर संसार में आता है यह संसार ही भाँग का बन है। शरीर का ग्रहण करना यही दांतुन का करना है। शरीर में प्रवेश करते ही माया के कार्यों में ऐसा मोहित हो जाता है कि अपनी प्रतिज्ञा को ऐकान्तिक भूल जाता है। धर्म कर्म सब भूल कर संसे सम्बन्धियों में ऐसा लिप्त

है, बस अब उन्हीं को सच्चे मानता है ये माता पिता ही सच्चे माता, पिता हैं और दूसरा कोई नहीं, यही लोक है दूसरा कोई लोक नहीं है, जो कुछ करना है वह सब यहीं के लिये है और कहां जाता है, जो कुछ भोग भोग लेंगे वही अपने हैं; धर्म कर्म में पड़ कर कौन दुःख सहे, ना कभी सत्संग में जाता न शास्त्रों को सुनता है पशुओं से भी बढ़ कर अपना मनुष्य जीवन निन्दनीय बनाता है।

पुत्री ! ये दो ही मार्ग तत्व वेत्ताओं के बताये हुये हैं, १ श्रेय, २ प्रेय। श्रेय मार्ग तो परमार्थ में ले जाने वाला है और प्रेय संसार चक्र में डालने वाला है इस पंच भौतिक शरीर को प्राप्त होते ही संसार मार्ग तो आप से आप खुल जाता है परन्तु परमार्थ के लिये अति प्रयत्न करना पड़ता है। यम, नियम अष्टांग योगादि साधनों को भली प्रकार अनुष्ठान करने से अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, जब अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, तब परमार्थ ज्ञान का अधिकारी होता है शहर के लड़के जो हैं, वेही रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श पांचों विषय हैं, ये पांचों विषय ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अपने २ विषयों के कंकड़ जीवात्मा पर मारते हैं चक्षु का विषय रूप, श्रोत्र का विषय शब्द, नासिका का विषय गंध, जिह्वा का विषय रस, और त्वचा का विषय स्पर्श है। जीवात्मा, इन विषयों में मोहित होकर अपने अमूल्य स्वास रूपी रत्नों को विषयों में खर्च कर डालता है। क्योंकि सिवाय स्वांसों के और कुछ तो जीवात्मा के पास था ही नहीं। जब इस प्रकार सारी आयु विषयों में बिताई तब या कब सम्भव है, कि अन्त समय में श्रेष्ठ बुद्धि हो। अन्त समय में वे ही तुच्छ वृत्तियें रूप धर २ कर अनेक प्रकार के दुःख देती हैं, उनके कष्टों से घबड़ा कर ये अति व्याकुल होकर, पछताता, रुदन करता और कहता है कि अब की बार मुझे क्षमा करो, कुछ जीवन और दो जिससे कि अब मैं धर्म कर्म में रत होकर परम पिता परमात्मा का भजन करूं। परन्तु ईश्वर का नियम अटल है, स्वांस समाप्त होने पर, एक स्वांस भी मांगा नहीं मिल सकता। यदि एक सम्राट् राजा का पुत्र मरण अवस्था को प्राप्त होने लगे और राजा अपनी सारी सम्पति पुत्र के ऊपर देने को तयार है परन्तु स्वांस वापिस आये, ये नहीं देखता, अर्थात् किसी प्रकार पुत्र का जीवन शेष रहे यह अति असम्भव बात है। पुत्र संसार से चल देता है। पिता रुदन कर मूर्छित हो जाता है, और अपना जीवन उसी पुत्रशोक में समाप्त करता है।

हे पुत्री ! ये स्वांस रूपि धन कितना अमूल्य है, जब मनुष्य के स्वांस पूरे हो जाते हैं, तब किसी उपाय से एक स्वांस मांगा नहीं मिलता। ऐसे अमूल्य धन को पाकर जो मनुष्य पार्मार्थिक उन्नति नहीं करते, उन पर शोक, शोक अतिशोक है। धन्य हैं वे ही जन जो उत्तम मनुज तनु पाकर ईश्वर प्राप्ति के लिये उन्नति करते हैं, बस उन्हीं का जीवन धन्य है ! धन्य है !

कं०—करुणाकर हरि जीव को, देत मनुज तनु वास।
भक्ति ज्ञान वैराग्य से, काटे भव की पाश ॥
काटे भव की पाश, मोक्ष पद अक्षय पावे।
माया से हो पार, गर्भ में लौट न आवे ॥
अबदेवी ! भव रोग, मारता रहता फिर फिर।
रोग निवारण हेतु, दिया नर तनु करुणाकर ॥

श्याम-छवि

[ले० श्रीमदन गोपाल 'सिंहल']

श्याम तन कटि पीत पट बिच घुंघरु ध्वनि यों बनी।
जिमि श्याम-वन में दामिनी ही कर रही हो पिक ध्वनि॥
विविध रङ्गों की गले में पुष्प की बन माल है।
संध्या समय आकाश में ज्यों इंद्र धनुष विशाल है॥
चन्द्र से मुख पर सुशोभित घुंघराले बाल हैं।
मानों सुधाकर से सुधा लेने बड़े लघु व्याल हैं॥
सिर पर पखा लख मोर के होता यही आभास है।
जनु व्याल से लख बाल भ्रम से मोर आया पास है॥
मत कुछ होना बुद्ध होना वरापि 'मदन' कर्म ये हेय है।
की दे रहा उपमा उसे जो स्वयं अन उपमेय है॥

ईश्वर भक्ति का फल निष्फल नहीं जाता

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती]

एक भक्तराज महाराज कहते थे कि बहुत से लोग बारंबार कहते हैं कि भक्ति का फल तुरंत ही नहीं मिलता। यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख होता और सोचता कि हमारे उत्तम धर्म में ऐसा निकृष्ट विचार आया कहां से? क्योंकि धर्म का फल तुरंत नहीं मिलता, ऐसा मान लेने से हमारी श्रद्धा ढीली पड़जाती है धर्म का मूल्य कम हो जाता है, मन निर्बल पड़जाता है, पुरुषार्थ कम हो जाता है, ज्ञान संकुचित होजाता है तथा ईश्वर के साथ हमारा सबंध ठंडा पड़ जाता है और भक्ति फल तुरंत ही नहीं मिलता, यह मानना अपने धर्म का और सर्व शक्तिमान् ईश्वर का अपमान करने के बराबर है। वह धर्म ही किस काम का जो तुरंत फल न दे? वह तो अधूरा कहा जायगा। फिर सब प्रकार के फल के दाता अनंत ब्रह्मांड के नाथ के यहां कमी किस बात की है कि वह हमारी भक्ति मूल्य उधार रखेगा? मेरा विश्वास और अनुभव है कि भक्ति का फल तुरंत ही मिलता है और शास्त्र और महात्मा गण भी ऐसा ही कहते हैं तथा देवताओं का भी ऐसा ही अनुभव है तिसपर भी बहुत से लोग कहते हैं कि भक्ति का फल शीघ्र नहीं मिलता। जहां तहां यह बात बार बार सुनने से मैंने विचार किया कि लोगों के ऐसा कहने का कारण क्या है? था तो बालक ही आयु लग भग दश वर्ष की होगी परन्तु पूर्व पुण्य के परिपाक के कारण संसार के विषयों से स्वाभाविक ही अरुचि थी। यह नहीं जानता था कि ऐसा क्यों होता है? इसका मुझको कुछभी ज्ञान नहीं था। यहां तक कि आत्मीयजनों से भी कोई स्नेह न था। हां यदि जहाँ ईश्वर चर्चा होती तो वहाँ अवश्य ही पहुंचता था। परन्तु उपयुक्त गाथा सुन कर विचारा करता कि ये लोग ही भूल करते हैं अथवा मेरी ही समझ में नहीं आता। ऐसे विचारों से मैं अत्यंत क्लेशित रहा करता था। एक दिन दैवात् मेरी समझ में आया कि मनुष्य एक जातिका बीज बोते हैं और अज्ञानता से दूसरे प्रकार के फल की आशा करते हैं। लोक में प्रसिद्ध है "रोपे पेड़ बबूर को आम कहां से होय।" मेरे पड़ोस में एक माई कहा करती थी वह मुझको भली भाँति स्मरण है कि जब तब मेरा मन बड़ा उदास होजाता है, जी घबड़ाने लगता है,

अनेक प्रकार की चिन्तायें घेर लेती हैं, माथा भारी हो जाता है और निष्कारण रुलाई आया करती है। इस से मैंने अपने पुरोहित से जीव के इस प्रकार उदास होने का कारण तथा उसका उपाय पूछा? पुरोहित ने कहा कि तुम्हारे ग्रह बड़े खराब हैं तथा शनि तुम्हें सताया करता है, इसलिये प्रति शनिवार को हनुमान जी को तेल चढ़ाया करो तथा सोने की मूर्ति सहित शनिका दान दो तो तुम अच्छी हो जाओगी। इस पर चार रत्ती की सोने की मूर्ति, सवासेर उड़द, सवा हाथ का एक काला कपड़ा तथा सवापाव तेल का दान मैंने दिया तथा आज दो वर्ष से बराबर प्रति शनिवार को हनुमानजी को एक पैसे का तेल चढ़ाती हूं तो भी मेरी तबीयत ठीक नहीं रहती। कौन जाने क्या बात है कि मेरी भक्ति फलीभूत नहीं होती और हनुमान जी मेरे ऊपर प्रसन्न नहीं होते? किसी डाक्टर की चिकित्सा करेंगे।

भाइयो! डाक्टर कहता था कि इसके माथे की रक्त संचार वाली नाड़ी बिगड़ गई है और इसके पीठ के ज्ञान तन्तु निर्बल पड़गये हैं, इस कारण से इसके माथे में नस्तर देना होगा, ज्ञान-तन्तु ठीक करने के लिये उसके बदन में बिजली लगानी पड़ेगी और उसे पुष्टि कारक भोजन देना पड़ेगा तब यह रोग मिट सकेगा। यह करने के बदले हनुमान जी को पैसे का तेल चढ़ाने से रोग के मिटने की आशा रखना तथा रोग के न मिटने पर हनुमान जी को दोष देना, कैसा बुरा है? इस पर तो किंचित् विचार करो! अपनी भूलों का, अज्ञान का, स्वार्थ का और बुरा रास्ता बताने वाले का दोष देवताओं के सिर पर मढ़ना तथा भक्ति का फल नहीं मिलता, कहकर ईश्वरीय धर्म को बुरा बताना कितना बड़ा पाप है, इसका तो विचार करो!

दूसरा दृष्टांत और सुनिये! हमारा एक पड़ोसी था, उसकी बुद्धि सराहनीय थी। व्यापार में उसका मन लगता नहीं था तोभी अफीम का सौदा किया करता था। बाजार का रुख तेजी पर होता तो उसका मंदी पर, दलाल मंदी समझते और मंदी का सौदा होता हो तो सेठ जी तेजी का सौदा करते यदि बाजार शांत होता तो वे व्यर्थ उछल कूद मचाते और बाजार का ढंग जब एक चाल का हो तो वे लहर में आकर उलटा पुलटा सौदा करलेते। इस प्रकार थोड़े समय में ही बारह लाख का उलटा बारह लाख देना होगया। इस के पश्चात् जब मैंने पूछा कि व्यापार कैसा चल रहा है? तो उसने उत्तर दिया कि मैं तो चौपट होगया। मैं ने पूछा ऐसा कैसे हुआ? उसने उत्तर दिया गत आश्विन के नव रात्र में एक दिन उपवास करता था तो दूसरे दिन फलाहार, रात्रि में जागरण व देवी का पूजन, दिन भर चंडी पाठ व प्रति दिन भिन्न प्रकार का बलिदान आदि करने लगा देवी के मंदिर का खूब शृंगार किया तथा बहुत से ब्राह्मणों को पाठ करने के लिये बैठाया। यह सब अफीम की तेजी मंदी जानने के लिये करता था।

इसके पश्चात् एकदिन मैंने स्वप्न देखा, उसमें आग लगी हुई दिखाई दी। दूसरे दिन पुजारी से इसका मैंने अर्थ पूछा। पुजारी भंगेडी था और पढ़ा लिखा भी न था "काला अक्षर भैंस बराबर" तोभी जंत्र मंत्र की, भूत प्रेत की, और ऋद्धि सिद्धि की बातें किया करता था। मैं उसे माल भी

अनेक प्रकार के दिया करता था जिससे वह मुझे प्रसन्न रखना चाहता था। मेरा ध्यान तेजी में है यह उसे मालूम था, इस लिये उसने कहा कि स्वप्न का फल यह है कि तेजी होगी। आपने आग लगी हुई देखी है, इस से अवश्य तेजी होना चाहिये। बाजार में भी तो जब तेजी होती है तब कहा करते कि "सौदे में आग लगरही है" सेठजी ! आपका नवरात्र तो तुरत फला, माता जीने कृपा करके आपको स्वप्न दिया, इससे अब शृंगार होना चाहिये। उनका दिया स्वप्न व्यर्थ नहीं जा सकता। आपकी इतनी भक्ति क्या व्यर्थ हो सकती है ? अबतो आप पर माता जी की कृपा होगई, अबतो उलटा पासा फैंकने पर भी वह सीधा पड़ेगा, अब आप तेजी का व्यापार कीजिये। इस समय बेड़ापार लग जायगा। आपके जैसे भक्त को माता धन न देगी तो और किसको देगी ? यानी अवश्य देगी।

पुजारी जी की ऐसी चापलोसी की बातें मुझे अच्छी लगी और मैंने भी सोचा कि इस बार नवरात्र बहुत अच्छी तरह से मनाया है इससे अवश्य लाभ होगा। ऐसा सोचकर बाजार का रुख देखे बिना मैं व्यापार में लग गया और मेरे सुख का अंत होगया मैं सोचता था कि मेरी भक्ति व्यर्थ न जायगी, माता जी अवश्य सहायक होगी, किन्तु उलटा मैं पिस गया। यह जमाना ही ऐसा है कि धर्मी दुःख भोगते हैं और कसाई आनंद से रहते हैं और क्या कहूं, यह सब अपने भाग्य का दोष है, ईश्वर की मेरे ऊपर इस समय टेढ़ी निगाह है, देखो पुजारी जी भी अपने देशको चलागया। अब इष्ट मित्र कोई पास नहीं आता, पहिले मेरा कमरा भरा ही रहता था ऐसा कोई समय नहीं होता था कि दश बीस मनुष्य बैठे न हों। कहाँ तक कहूं स्त्री हर समय झगड़ा करती है कि मेरा गहना लाओ मैं नहीं जानती चाहे तुम मरो या जीओ। माता तो मेरी फाड़ खाने को दौड़ती है क्या करूं भाई घर ! चैन न बाहर चैन। आज आपने इतना तो पूछा है, नहीं तो मुझसे तो कोई अब बात नहीं करता। हा ! इस समय मित्र भी शत्रु होगये हैं। मेरे यहां एक महात्मा आया करते थे वह कहा करते थे कि इस कामको छोड़दे तो उनको उलटा उत्तर दिया करता था। हा! उन का कहा हुआ वाक्य ठीक है सच है वह अब मुझ को याद आता है " जब बुरेदिन आते हैं तब मित्र शत्रु हो जाते हैं घायल मृग के रुधिर चिन्ह बधिकों को पता बताते हैं" अनेक व्याख्या करके मुझको समझाते थे अब उन्हीं के पास शांति की खोज में जाऊंगा।

प्रिय पाठको ! अब विचार करो कि व्यापार करने आये भी नहीं हैं केवल ईश्वर भक्ति करने आये हैं। परन्तु यही मानलें तो व्यापार में ध्यान दें नहीं बाजार का रंग समझे नहीं, मूर्खों पर विश्वास रख कर तथा स्वप्नों पर भरोसा करके काम करें और मन में ऐसी आशा रखें कि माताजी सहायता करेंगी, नव रात्र की भक्ति व्यर्थ न जायगी, तो इन सबका परिणाम क्या होगा ? इससे तो अवश्य नष्ट हो जायगा, इसमें भक्ति का क्या दोष ?

शंका–आपके दोनों दृष्टांत वालों ने भक्ति तो की, उनके विपरीत समझने को हम नहीं कहते परन्तु भक्ति का फल तो मिलना चाहिये। सो क्या हुआ यह बताइये।

समाधान–भाई को तो हनुमान् की भक्ति से यह फल मिला कि उसको डाक्टर की चिकित्साको

सूझी अरी सेठ जी को अपनी शांति की खोज की सूझी यही भक्ति का फल है और इनको भक्ति का पुरस्कार मरने के पश्चात् मिलेगा।

इन कारणों को समझे बिना, आस पास देखे बिना, और जो युक्ति करना चाहिये उसे किये बिना, अपनी भूलों का, निर्बलताओं का, अभिमान का, स्वार्थ का तथा अपनी मूर्खता का सब दोष हम भक्ति पर ही लाद देते हैं और कहते हैं कि भक्ति का फल शीघ्र और ठीक रीति से मिला नहीं। परन्तु याद रखो कि ऐसा करना पवित्र भक्ति का तथा सर्व शक्तिमान् परम पवित्र परमात्मा का बड़े से बड़ा अपमान करना है। इस लिये धर्म का फल ठीक और शीघ्र नहीं मलता यह मान बैठने के पहले हमें कौनसा फल चाहिये, उसके लिये हमें क्या करना चाहिये और हमने क्या किया है इत्यादि बातों पर पहले विचार करना चाहिये। हमें कौन सा फल चाहिये और कौनसा खोज रहे हैं इस की खोज करो! यदि आँख दुखती हो तो पाँव के बाधने का प्रयत्न मत करो! जब इन सब बातों पर विचार करोगे तो तुरंत ही समझ में आजायगा कि महा न्यायी ईश्वर के राज्य में किसी का भी परिश्रम व्यर्थ नहीं होता। अरे! "दूध के जले हुए छाछ को भी फूंक कर पीते हैं"

मेरे परम प्यारे हरि जनो! ऐसा मत करो और निस्संदेह पूर्ण विश्वास रखो कि ईश्वर भक्ति का फल तो शीघ्र ही मिलता है इस लिये समझ बूझ कर प्रेम पूर्वक भक्ति करो और यही सब भक्तगणों को हाथ उठाकर तुमुल शब्द से घोषणा करदो कि भक्ति का परिश्रम व्यर्थ न जायगा और शीघ्रही फल मिलेगा किन्तु भक्ति करने से पहिले ही भक्ति करने का फल केवल विचार से ही कुछ मिलेगा। जैसे सूर्योदयसे पहिले अरुणोदय।

मूर्त्तिपूजा का जन्म

[ले० श्री दामोदर सहाय सिंह, एल० टी०, कविकिंकर]

मूर्त्ति पूजा कुछ लोगों के विचार में हाल की चीज है। किन्तु जिन जिन दलीलों को वे पेश करते हैं उनसे कहीं अधिक प्रमाणिक दलीलें उनके विपक्ष में मिलती हैं जो उनके सिद्धान्त को निर्मूल नहीं तो बहुत दूर तक परास्त जरूर कर देती हैं।

वेदों में मूर्त्ति पूजा का जिक्र है या नहीं! शास्त्रों में इसकी तरफ से क्या क्या प्रमाण मिलते हैं! पुराणों ने इसे अन्त में किस दरजे तक पहुंचाया! इन सब बातों की मीमांसा मैं आज करने नहीं बैठा हूं। मूर्ति पूजा के विरोधी वेदों शास्त्रों और पुराणों तक से मूर्ति पूजा खण्डन भले ही किया करें और मूर्त्ति पूजा के समर्थक पुराणों शास्त्रों और वेदों तक से मूर्ति पूजा का मंडन भले ही किया करें। किन्तु उन खंडन मंडनों से, उन तर्क वितर्कों से, आज मुझे कुछ प्रयोजन नहीं।

आज मैं गोसांई तुलसी दास जी के दो सवैये इस लेख के अन्त में उपस्थित करता हूं जिनमें मूर्ति पूजा का समाधान और उत्पत्ति काल का निर्णय बहुत थोड़े में विचित्र रीति से किया गया है। मुझे सन्देह है कि शायद ही ग्रन्थकर्त्ता का ध्यान इस ओर गया हो जिस ओर मैं पाठकों का ध्यान आकर्षित कर रहा हूं।

गोसांई जी की कविताओं के अर्थ तो लोग

अनगिनत प्रकार से करते ही हैं जिनका ध्यान कदाचित् कवि के मस्तिष्क में भी न हुआ होगा। किन्तु यह कौन कह सकता था कि उनकी कविता से पुरातत्व वेत्ताओं को भी सहायता मिलेगी!

जो लोग पुरातत्ववेत्ता तो कहलाना चाहते हैं किन्तु प्राचीन प्रमाणों को मानने में संकोच करते हैं उनको भारतेन्दु जी का "रामायण का समयनामक लेख का मुखबन्ध पढ़कर उपदेश ग्रहण करना चहिये। यदि निष्पक्ष होकर देखा जाय तो मूर्त्तिपूजा संसार में बहुत पुरातन समय से विद्यमान है। ऐसे कहने को तो कुछ जातियाँ अपने को मूर्त्ति पूजक कहने में हिचकती और दूसरी जातियों को मूर्तिपूजक कह कर उनसे घृणा करती है। किन्तु विरली ही कोई संसार की ऐसी जाति है जिसमें मूर्त्तिपूजा किसी न किसी ढंग से न होती हो।

मेरी विनीत समझ में निराकार, निर्गुण, अनिर्वेद्य, व्यापक ईश्वर को किसी न किसी ढंग से साकार सगुण वचन-गम्य और परिमित करने का नाम मूर्त्ति पूजा है और इसे कौन मत वा कौन जाति नहीं करती?

यदि इन सूक्ष्म और उदार अर्थों को छोड़ कर मूर्ति पूजा का स्थूल और संकुचित अर्थ लिया जाय तो किसी प्रकार की मूर्ति, चित्रादि के पूजने या आदर करने का नाम मूर्त्ति पूजा है। मुसलमान मक्काशरीफ के काबा में क्या काले पत्थर के टुकड़े को भक्ति भाव से नहीं चूमते? क्रिस्तान, विशेष कर रोमनकाथोलिक, हजरत ईसा के चित्र को क्या पूज्य और आदरणीय दृष्टि से नहीं देखते? वे हजरत ईसा को ईश्वर का पुत्र, तथा ईश्वर का अवतार, क्या नहीं मानते? तब हिन्दू ही मूर्त्ति पूजक क्यों हैं?

हमारे शास्त्रों में सैकती, लौही, मणिमयी, इत्यादि से लेकर मनोमयी तक क्या मूर्ति पूजा का विधान नहीं बताया गया है? मूर्त्ति पूजा की सूक्ष्म और स्थूल रीति तो उपासक की आध्यात्मिक उन्नति पर निर्भर है।

खैर इन सब बातों से अभी मुझे मतलब नहीं मतलब तो है सिर्फ इस बात से कि मूर्त्ति पूजा का जन्म कब हुआ, मूर्त्ति पूजा कब से प्रचलित हुई। इतिहासकों से छिपा नहीं है कि कला कौशल चित्रणादिकी उन्नति और अवनति के साथ क्रमशः मूर्त्ति पूजा की भी उन्नति और अवनति होती गई। संसार के इतिहास से जान पड़ता है कि जब कभी मूर्त्ति पूजा की मात्रा हद से ज्यादा बढ़ी उसका कुव्यवहार होने लगा तब किसी महात्मा ने जन्म ग्रहण करके मूर्त्ति पूजा का निराकरण किया और जब कभी मूर्त्तिपूजा की समुचित मात्रा का अभाव होने पर हुआ, मूर्त्ति पूजा निर्मूल होने पर हुई तब किसी महात्मा ने अवतार लेकर मूर्त्ति पूजा का का पुनरुत्थान किया।

अरब वालों में मूर्त्तिपूजा का अनुचित और भयंकर व्यवहार पराकाष्ठा तक पहुंचने पर महात्मा मुहम्मद ने जन्म लेकर उसका खंडन किया और बंगाल के नदिया प्रान्त में न्याय-संस्कृतादि केवल शुष्क शास्त्रों का हृदय पर अधिकार होने के कारण वहां वाले जब नास्तिक हो चले-मूर्त्ति पूजा की समुचित मात्रा जब निर्मूल होने पर हुई तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने अवतार ग्रहण कर अनन्य भक्ति के सुरस और अनिवार्य प्रवाह से बंगाल क्या प्रायः भारत वर्ष को, परिप्लावित कर दिया। बस ऐसा ही होता

आया है। यही ईश्वरी नियम है। यदि आप इतिहास का जन्म ईसाइयों के पुराने धर्म्म ग्रन्थ में उल्लेखित बाइबल के प्रसार के अनन्तर मानते हैं तो मैं आप से सहमत नहीं, क्योंकि बहुत से ऐसे मानने वाले पांच सात हज़ार वर्ष के आभ्यन्तर ही सृष्टि की सभी बातें गिन डालते हैं। यद्यपि हमारे सिद्धान्तों से केवल कलियुग ही पांच हज़ार वर्ष से अधिक बीता, द्वापरादि की बात तो अलग रहे। हम रामायण और महाभारत की अधिकांश कथाओं को इतिहास मानते हैं और अनेक पश्चिमी विद्वान् भी इस में सहमत हैं। कुछ पूर्व ग्रन्थानभिज्ञ पश्चिमी विद्वान् ऐसे भी हैं जो भारत वर्ष के मुख उज्वल करने वाले इन अनुपम ग्रन्थरत्नद्वय को काल्पनिक कवियों का केवल प्रलाप मात्र समझते हैं ऐसे लोगों से मैं कुछ नहीं कहता क्योंकि इन्हें समय ही ठीक रास्ते पर ला सकता है और धीरे धीरे ला भी रहा है।

यह निःसन्देह है कि हिन्दू धर्म्म सब ही धर्म्मों से पुराना है। इसके पहले के किसी धर्म्म का पता नहीं लगता। इस लिये मूर्ति पूजा का जन्म इसी से हुआ। इसके धार्मिक ग्रन्थ बड़े ही महत्व के हैं वाल्मीकीय रामायण आदि काव्य है। इसे पूर्वी विद्वान् तो मानते ही हैं पर पश्चिमी पंडित भी इसे बहुत ही पुराना बताते हैं।

इस ग्रन्थ में अनेक स्थानों में मूर्त्तिपूजा का उल्लेख आया है। इसमें बहुत प्रकार की अनगिनत अद्भुत मूर्त्तियों का वर्णन है जिससे यह भली भांति सिद्ध होता है कि भगवान रामचन्द्र के समय में अर्थात् त्रेता युग में मूर्त्तिपूजा जारी थी। पूर्व कथित गोसाईं जी की कविता से मूर्त्तिपूजा का जन्म और भी पहले प्रमाणित होता है। आपने स्वरचित कवित्त रामायण के दो सवैयों में यह बात अच्छी तरह झलका दी है कि जिस समय पत्थर के खंभे को फाड़ कर भी नरसिंह जी ने अवतार धारण करके अपने अनन्य भक्त और सत्याग्रही प्रह्लाद की रक्षा की थी उसी समय मूर्त्ति पूजा का जन्म हुआ। दूसरे सवैये अन्तिम का पद "तब से सब पाहन पूजन लागे" विशेष विचारनीय है।

सवैया

भारत पाल कृपाल जो राम ओही सुमिरे तेहि को नेंह डाढ़े।
नाम प्रताप महा महिमा कै करे किये खोटेउ छोटेउ काढ़े॥
सरक एकहिं एक अनेक भये तुलसी तिहुतार न ठाढ़े।
प्रेम बड़ो प्रहलादहि को जिन पाहनते परमेश्वर काढ़े॥
कादि कृपान कहूं पितु काल कराल विलोकिन भागे।
राम कहां सब ठाउँ है खंभ मह्यमुनि हांक सुने हरिआगे॥
बैरि विदारि भये विकराल कहे प्रहलादहि के अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बड़ी तुलसी तब से सब पाहन पूजन लागे॥

पुराण गाथा

[ले० श्री पूज्य भोले बाबाजी अनूपशहर]

कवि वेदान्तकर्तारं भक्तितत्व प्रकाशकम्।
पाराशर्य मुनिश्रेष्ठं वन्दे साक्षात् हरिं स्वयम्॥

पाठक गण! क्या आप इतिहास देखने के प्रेमी हैं? यदि ऐसा ही है, तो आज आपको इस

सब से प्राचीन इतिहास सुनाना चाहते हैं, जिसको सुन कर आप का अन्य इतिहासों में मन नहीं लगेगा! यदि आप को भूगोल, खगोल विद्या देखने में रुचि है, तो हम आज आप को ब्रह्माँडगोल का दिग्दर्शन करावेंगे, जिस का दर्शन करके आप ऐसे तृप्त हो जाँयगें कि फिर कोई गोल आपको मीठा नहीं लगेगा किन्तु सब गोल सीठे हो जाँयगें! यदि आप साइंस के आचार्य हैं, तो, आज का साइंस पढ़कर आप का अधूरा साइंस जो कभी पूरा होने वाला नहीं है, आज पूरा हो जायगा क्योंकि साइंस वाले कार्य कारण की खोज ही में तो लगे रहते हैं यानी यह किस से उत्पन्न हुआ, कैसे उत्पन्न हुआ, इसी धुना धुनी में तत्पर रहते हैं, आज का साइंस पढ कर सब कारणों का अन्तिम और मुख्य कारण आपके जानने में आ जायगा और साइंस की इति-श्री हो जायगी! यदि आपको ग्रन्थावलोकन में प्रेम है और आप में से किसी ने केम्ब्रिज, ओक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी की लाइब्रेरी देखी है और कितनों को देखने की तीव्र अभिलाषा है, आप दोनों को हम ब्रह्म यूनीवर्सिटी की सैर करावेंगे कि उपरोक्त दोनों यूनीवर्सिटी तुच्छ जचने लगेगीं और आप पूर्ण विद्वान हो जांयगे! यदि आप प्रश्न करें कि आप इतने बड़ावे देकर बिना पूछे ही अपना मस्तिष्क क्यों पचाते हैं, और कागज स्याही क्यों खराब करते हैं, तो इस का उत्तर यह ही है कि हम को 'भक्ति' प्राणों के समान प्यारी है और आप 'भक्ति' के प्रेमी हैं, इसलिये आप हम को प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं! सब का अनुभव है कि पुत्र से पौत्र अधिक प्यारा होता है और लोकोक्ति भी है कि मूल से ब्याज अधिक प्रिय होता है, तभी तो ब्याज के लोभ से मूल को भी मनुष्य दूसरे के हाथों में दे देते हैं, आप हमारे प्यारे हैं, इसलिये उत्तम वस्तु जान कर आप की भेंट करते हैं, आज की कथा सुन कर आप को महान् फल की प्राप्ति होगी! क्या महान् फल होगा, यह पीछे बतावेंगे, पहिले कथा सुनिये, ध्यान देकर सुनिये:-

सब लोकों से ऊंचा और उत्तम ब्रह्म लोक है, वहां दिव्य पर्यंक पर जगत् के पिता ब्रह्माजी विराजमान हैं, देव, दानव दोनों ही वहां ब्रह्म सभा में एकत्र हैं, इतने में नारद जी वहां आकर इस प्रकार प्रश्न करते हैं।

हे देव देव! हे भूतभावन! आप सब से प्रथम उत्पन्न हुये हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूं! हे ब्रह्मन्! जिस ज्ञान से आत्म तत्व का निर्णय होता है, वह ज्ञान आप मुझ से विस्तार पूर्वक कहिये। यह विश्व जिसका स्वरूप है, जिसके आश्रय में स्थित है, जिस में से यह उत्पन्न होता है, जिसमें लीन होता है, जिसके आधीन है और जिस के अधिकार में है, इस पुरुष के तत्व को मैं आपके श्रीमुख से यथार्थ रूप से सुनना चाहता हूं, कृपा करके वर्णन कीजिये। हे प्रभो! यह सब आप जानते हैं। जैसे हाथ में आंवला हो; इसी प्रकार भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल आपके ज्ञान के विषय हैं, यानी आप तीनों कालों में होने वाले पदार्थों को जानते हैं क्योंकि आप विश्व के प्रभु हैं। हे भगवन्! आपको विज्ञान शक्ति किस ने दी है? आप किस आधार में स्थित हैं? आप किसके आधीन हैं और किसके स्वरूप से प्रकाशित हैं? आप अकेले ही किस की माया शक्ति से किसी की सहायता बिना पांच तत्वों से इस जगत् को उत्पन्न करते हैं? हे प्रभो! जैसे।

मकड़ा श्रम बिना सहज ही में अपनी शक्ति से जाल उत्पन्न करके उस में विहार करता है इसी प्रकार आप भी अपनी शक्ति से अकेले ही इस विश्व को उत्पन्न करके उस में विहार करते हैं किंतु लिप्त नहीं होते। संसार में नाम रूप गुण युक्त जितनी वस्तुयें हैं, इनमें से किसी को मैं आप से भिन्न नहीं देखता। ब्रह्मांड भर में आप के समान कोई नहीं है फिर आप से श्रेष्ठ तो कोई हो ही कहां से ? आप ही सब से श्रेष्ठ हैं। ऐसे सर्वोत्तम ईश्वर होकर भी आप एकाग्र मन होकर घोर तप किया करते हैं, ऐसा देख कर मेरे मन में शंका उत्पन्न होती है कि कोई आप से भी श्रेष्ठ अवश्य है, जिस की आप उपासना करते हैं। हे जगदीश्वर ! मैंने आप से जो ये प्रश्न किये हैं, उन सब का उत्तर आप भली प्रकार दे सके हैं क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये उस गूढ़ तत्व को जिस प्रकार मैं समझ सकूं, इस प्रकार समझाइये।

नारद जी के ये गूढ़ प्रश्न सुन कर देवादि सब सभासद बहुत ही प्रसन्न हुये। इन प्रश्नों का उत्तर सुनने के लिये सब को उत्सुक देख कर जगत्पिता ब्रह्माजी सर्व शास्त्रों का सार कहने की इच्छा से इस प्रकार अमृत की वर्षा करने लगे:-

ब्रह्माजी - हे पुत्र ! तुमने जो प्रश्न किये हैं, वे परम श्रेष्ठ हैं। इन प्रश्नों के उत्तर द्वारा परमेश्वर की पतितपावनी लीलाओं का प्रकाश होगा, मैं उस करुणामय परमेश्वर की करुणा का विस्तार करने के लिये उत्पन्न हुआ हूं, तुमने ये प्रश्न करके संसार का बड़ा ही उपकार किया है क्योंकि तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर में मैं भगवद्गुणों का वर्णन करूंगा, भगवत् के गुण कथन करने से भगवत् की करुणा का प्रकाश होगा ! हे नारद ! तुम जो मुझ को जगत् भर में सब से श्रेष्ठ मानते हो, यह तुम्हारा अनुमान ठीक ही है परन्तु मुझको ही सर्व से श्रेष्ठ और स्वतंत्र कहना या समझना, यह तुम्हारी भ्रान्ति है। मेरा भी शासन करने वाला एक पुराण पुरुष परमेश्वर है। उस सनातन पुरुष की इच्छा से ही मैं इस जगत् को उत्पन्न करता हूं, वह ही पुरुषोत्तम मेरा परम पूज्य पिता और इष्टदेव है, जैसे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह तारा गण दूसरे के तेज से प्रकाशित होने पर भी स्वयं प्रकाशित प्रतीत होते हैं, इसी प्रकार जिस परमेश्वर के चैतन्यमय तेज से प्रकाशित विश्व को उत्पन्न करके मैं सब का स्रष्टा कहलाता हूं, उस भगवान् वासुदेव ईश्वर को मैं प्रणाम करता हूं। हे नारद ! जिस परम पुरुष की दुर्जय माया से मोहित होकर लोग मुझे जगत् का गुरु कहते हैं, उस ईश्वर के सामने वही दुर्जय माया जिससे मोहित होकर प्राणी 'मैं' और 'मेरे' में फसे रहते हैं, लज्जा को प्राप्त होकर, जैसे सूर्य के संमुख रात्रि, इसी प्रकार ठहर नहीं सकती ! हे वत्स ! उस वासुदेव से श्रेष्ठ अथवा भिन्न कोई वस्तु नहीं है क्योंकि सृष्टि के उपादान स्वरूप जितने द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव हैं, वे सब वासुदेवमय हैं। सब वेद, सब देवता, सब लोक नारायण से उत्पन्न हुये नारायण की मूर्ति ही हैं। योग, तप, ज्ञान और गति सब ही नारायण हैं। मैं उन्हीं सर्व स्रष्टा, जगदीश, कूटस्थ (छुपे हुये) ईश्वर के कटाक्ष से उत्पन्न होकर उन्हीं की शक्ति से इस जगत् को प्रकट करता हूं।

हे नारद ! वे ही निर्गुण निराकार परमेश्वर उत्पत्ति, पालन और संहार अपने इन तीन कार्यों के

लिये माया के सत्व, रज और तम इन तीन गुणों को ग्रहण करके सगुण हो जाते हैं। उन्हीं नित्य, स्वतंत्र मायाधारी पुरुष को द्रव्य, ज्ञान और क्रिया के कारण स्वरूप तीनों गुण कार्य, कारण और कर्ता रूप में आवद्ध करते हैं। पंच तत्व का नाम द्रव्य है, इन्द्रियों का नाम क्रिया है क्योंकि इन्द्रियों से ही क्रिया होती है, इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं का नाम ज्ञान है, क्योंकि इनके बिना कोई ज्ञान नहीं हो सकता। हे नारद! वे ही इन्द्रियों के ईश्वर भगवान् तीनों गुणों से युक्त होकर इन माया के गुणों के आवरण में ऐसे छुप गये हैं कि उनके सिवाय उनकी गति को अन्य कोई नहीं देख सका। मेरे और संपूर्ण जगत् के वे ही ईश्वर हैं। उन्हीं सर्व व्यापी ईश्वर ने 'मैं बहु रूप धारण करूं' इस कार्य के लिये इच्छा शक्ति रूपिणी माया से अपने में काल, कर्म और स्वभाव को प्रकट किया है। हे वत्स! उन्हीं परम पुरुष में अधिष्ठित और माया स्थित तीनों गुण काल द्वारा क्षोभ को प्राप्त होते हैं, स्वभाव द्वारा परिणाम में आते हैं और कर्म द्वारा सम्मिलित होकर 'महतत्व' कहलाते हैं।

जब 'महत्व' विकार को प्राप्त होता है, 'महत्तत्व' में स्थित जो रजोगुण और सतोगुण हैं, वे दोनों मिलकर माया में स्थित द्रव्य यानी पंच तत्व ज्ञान यानी इन्द्रियों के देवता, और क्रिया यानी इन्द्रिय ये सब एक तमोगुण प्रधान अवस्था में रूपान्तर को प्राप्त होते हैं, इस तमोगुण प्रधान अवस्था को अहंकार कहते हैं। यह अहंकार तीन प्रकार का है, ज्ञान शक्ति के मेल से अहंकार की जो अवस्था है, उस को वैकारिक अथवा सात्विक अहंकार कहते हैं, क्रिया शक्ति के मेल से अहंकार की जो अवस्था है, उसको राजस अहंकार कहते हैं और द्रव्य शक्ति से मिली हुई अहंकार की अवस्था को तामस अहंकार कहते हैं, हे नारद! इन सब तत्वों का आदि जो तामस अहंकार है, वह रूपान्तर को प्राप्त होकर प्रथम आकाश को प्रकट करता है, इस आकाश को माया और गुण को शब्द कहते हैं। यह शब्द ही जगत् में द्रष्टा और दृश्य का बोधक है। इस आकाश के रूपान्तर होने पर स्पर्श गुण युक्त वायु उत्पन्न होता है। वायु में आकाश का शब्द गुण भी है, यह वायु विश्व को प्राण, ओज, बल और इन्द्रिय स्फूर्ति देने वाला है, काल, कर्म और स्वभाव से रूपान्तर को प्राप्त हुआ वायु तेज को प्रकट करता है, इस तेज का गुण रूप है और इस में आकाश का गुण शब्द और वायु का गुण स्पर्श भी है, फिर तेज रूपान्तर को प्राप्त होकर रसगुण युक्त जल तत्व को प्रकट करता है, जल में भी आकाश, वायु और तेज तीनों के गुण शब्द, स्पर्श और रूप हैं, जल तत्व रूपान्तर को प्राप्त होकर गंध गुण युक्त पृथिवी को प्रकट करता है, इस में भी आकाशादि के गुण शब्दादि हैं। वैकारिक अहंकार से मन और दश सात्विक देव उत्पन्न होते हैं। दिशा, वायु, सूर्य, प्रचेता, अश्विनी कुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र और प्रजापति ये दश देवताओं के नाम हैं। तैजस यानी राजस अहंकार से बुद्धि, प्राण और श्रोत्र, त्वचा, रसना, चक्षु, घ्राण ये पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और वाक, पाणि, पाद, वायु और उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं।

हे नारद! ये तत्व, इन्द्रिय, मन, गुण आदि बिना मिले हुये शरीर नहीं बना सके तब भगवान् की शक्ति से प्रेरित होकर ये सब एकत्र होते हैं और

अपने २ प्रधान गुण भाव से समष्टि, व्यष्टि रूप उभयात्मक शरीरों को उत्पन्न करते हैं। समष्टि नाम समस्त का है और व्यष्टि नाम व्यक्ति का है। हे नारद! काल, कर्म और स्वभाव स्थित जीव अनन्त वर्षों के पीछे जल स्थान उस तत्वमय निर्जीव अंडको सजीव करता है और उस अण्ड को फोड़ कर सहस्र ऊरू, सहस्र पाद, सहस्र बाहु, सहस्र नेत्र और सहस्र शिर वाला विराट् पुरुष निकलता है। उस विराट् पुरुष के कटि देश से लेकर नीचे के सात अंगों में अतलादि सात लोकों को और जघन आदि ऊपर के सात प्रदेशों में भू आदि सात लोकों को कल्पना पंडित करते हैं। उस पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, ऊरुओं से वैश्य और चरणों से शूद्र उत्पन्न हुये हैं। विराट पुरुष के पैरों में 'भू' लोक है, नाभि में 'भुवः लोक है, हृदय में स्वर्ग लोक है। वक्ष स्थल में महःलोक है, ग्रीवा में जन लोक है, स्तनों में तप लोक है, ललाट में सत्य लोक है और शिर में सनातन वैकुंठ लोक है। कटि देश में अतल लोक है, ऊरू देश में वितल लोक है, जानुओं में सुतल लोक है, जंघाओं में तलातल लोक है, गुप्त देश में महातल है, पाद में रसातल है और पादतल में पाताल है। इस प्रकार पुरुष के अंगों में लोक की कल्पना है। अथवा भूलोक चरणों में, भुवर्लोक नाभि में और स्वर्ग लोक शिर में यह त्रिलोकी की कल्पना है।

हे नारद! वाक्य का अधिष्ठाता देवता अग्नि विराट् पुरुष के मुख से उत्पन्न हुआ है, गायत्री आदि सात छन्द ईश्वर की सात धातुओं से उत्पन्न हुये हैं। देवताओं का अन्न हव्य, पितरों का अन्न कव्य और मनुष्यों का अन्न अमृत और षट् रस ये सब ईश्वर की जिह्वा से उत्पन्न हुये हैं। शरीर स्थित प्राण वायु ईश्वर की नासिका से उत्पन्न हुआ है, अश्विनी कुमार, औषधियां, सामान्य तथा विशेष गंधये सब भगवान् की घ्राण इन्द्रिय से उत्पन्न हुये हैं। रूप और रूप का प्रकाशक तेज चक्षु इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ है, सूर्य और प्रभा भगवान के नेत्र गोलक से उत्पन्न हुये हैं। दिशा और श्रोत्र कानों से और आकाश और शब्द श्रोत्र इन्द्रिय से उत्पन्न हुये हैं। भगवान् के शरीर से सब वस्तुओं का चैतन्य अंश और शोभा उत्पन्न हुई है। स्पर्श, वायु और संपूर्ण यज्ञ विराट् की त्वचा से उत्पन्न हुये हैं। वृक्षादि कुश विराट् के रोमों से उत्पन्न हुये हैं। केशों से मेघ, मूछों से बिजली, नखों से शिला और अनेक धातुयें उत्पन्न हुई हैं। लोकपाल बाहुओं से उत्पन्न हुये हैं। भू भुवः और स्वः तीनों लोक भगवान् के पराक्रम यानी पैर को ठोकर से उत्पन्न हुये हैं। क्षेम, शरण और वरदान चरण से उत्पन्न हुये हैं। वीर्य, जल, समस्त पदार्थ, पर्जन्य, प्रजापति विराट् के लिंग से उत्पन्न हुये हैं, आनन्द और भोग का सामर्थ्य उपस्थ इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ है। मित्र देवता, यम देवता, यम देवता वायु से प्रकट हुये हैं। हिंसा, निर्ऋति और मृत्यु गुह्य देश से उत्पन्न हुये हैं। अधर्म और अज्ञान भगवान् की पीठ से उत्पन्न हुये हैं। नाड़ियों से नदी, नद, अस्थिसमूह और पर्वत उत्पन्न हुये हैं। हे नारद! फल पुष्प, अन्न का रस, वृष्टि, नाले, सरोवर, सागर आदि का रस, सब तत्वों की लय अवस्थादि ये सब ईश्वर के उदर से उत्पन्न हुये हैं। मन नामक जीव का लिंग शरीर उसी परम पुरुष के हृदय से प्रकट हुआ है।

हे नारद! धर्म, स्वयं मैं, तुम सनत्कुमारादि चार कुमार, श्री, शिव, विज्ञान और चैतन्य ईश्वर के आत्मा से प्रकट हुये हैं। मैं, तुम, शंकर, मुनिगण, देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, मृग, सर्प, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, भूतगण, उरग, पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण वृक्ष, जलस्थल तथा आकाश में रहने वाले अनेक प्रकार के जीव, ग्रह, नक्षत्र, केतु, तारागण, बिजली आदि सब ये ही विराट् पुरुष हैं। भूत, भविष्य वर्तमान सब ईश्वर से व्याप्त हैं। जैसे सूर्य अपने मंडल को प्रकाशित करते हुये ब्रह्मांडभर को प्रकाशित करते हैं, इसी प्रकार भगवान् विराट् रूप से सब जगत् के भीतर और बाहर प्रकाशित हैं।

हे नारद! भगवान् केवल सर्वव्यापी ही नहीं हैं किंतु अभय और अमृत के भी ईश्वर हैं, इसलिये उनकी महिमा का निश्चय करना दुष्कर है। उन अविनाशी ईश्वर के अंगों में सब प्राणी स्थित हैं और उनके शिरो भाग में यथा क्रम ऊपर अमृत, अभय और क्षेम विराजमान हैं। ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ आश्रम के धारण करने वाले ऋषियों के तप, मह, जन आदि लोक त्रिलोकी के बाहर हैं और त्रिलोकी के भीतर ब्रह्मचर्य रूप माया से रहित गृहस्थों के लोक हैं। हे नारद! और मोक्ष के साधन रूप प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दो मार्ग हैं। क्षेत्रज्ञ पुरुष यानी जीव इन दोनों मार्गों के आश्रित है वेदवेत्ता इन दोनों में से निवृत्ति मार्ग को विद्या और प्रवृत्ति मार्ग को अविद्या कहते हैं। हे नारद! जिन से यह ब्रह्मांड और विराट् रूप विश्व उत्पन्न हुआ है, वे ही परमेश्वर हैं। जैसे सूर्य सर्वत्र प्रकाश करता हुआ भी अपने मंडल में स्थित है, इसी प्रकार परमेश्वर अपनी चैतन्य शक्ति से जगत् को प्रकाशित करते हुये भी अपने सारूप में ही स्थित हैं। जब मैं उन महा पुरुष की नाभि से उत्पन्न हुये कमल से उत्पन्न हुआ, तब मुझे उन पुरुष के अंगों में यज्ञ की सामग्री स्वरूप अनेक वस्तुयें दिखायी पड़ीं और मैं कुछ अनुभव न कर सका। यज्ञपशु वनस्पति, कुश, यज्ञ के योग्य स्थान, उत्तम समय, यज्ञ के पात्र, अनेक औषधियाँ, घृतादि अनेक रस, मृत्तिका, लोहादि धातु, जल, चातुर्होत्र, ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम वेद, ज्योतिष्टोमादि यज्ञ, धर्म, व्रत, मंत्र, दक्षिणा, देवता, कल्प यानी कर्म की पद्धति, संकल्प, तंत्र, गति, मति यानी ध्यान, प्रायश्चित्त और समर्पणादि यज्ञोपयोगी सब सामग्री मैं ने एकत्र की और उस यज्ञ सामग्री से उन यज्ञ पुरुष ईश्वर की आराधना की। पश्चात् मरीचि कश्यप आदि नव प्रजापति तुम्हारे भाइयों ने भी एकान्त चित्त से निर्गुण तथा सगुण ईश्वर की आराधना की फिर काल के क्रम से ऋषिगण, पितृगण, देवता, दैत्य और मनुष्यों ने उसी सामग्री से यज्ञ करके यज्ञ पुरुष की आराधना की।

हे नारद! जिन नारायण में यह विश्व स्थित है, वे परमार्थ से निर्गुण परमानन्द स्वरूप हैं, फिर भी सृष्टि आदि कार्यों के लिये माया के गुण ग्रहण करके सगुण होते हैं। उन्हीं की आज्ञा से मैं जगत् को उत्पन्न करता हूं और महादेव संहार करते हैं। वे ही सर्व शक्तिमान् ईश्वर विष्णु रूप से स्वयं जगत् का पालन करते हैं। हे पुत्र! जो कुछ तुमने मुझ से पूछा था, वह सब मैंने तुम से कह दिया, कार्य और कारण दोनों ही परमेश्वर से भिन्न नहीं है। हे वत्स! मेरी वाणी कभी मिथ्या

नहीं होती, मेरा मन कुमार्ग में नहीं जाता, मेरी इन्द्रियाँ भी खोटे व्यापार में नहीं लगतीं इस कारण यह ही है कि मेरे हृदय में सर्वदा ईश्वर की इच्छा स्वरूप चैतन्य शक्ति प्रकाश किया करती है।

हे पुत्र! यद्यपि मैं वेदमय, तपमय प्रजापतियों का पूज्य और सर्व श्रेष्ठ हूं, तो भी मैं अपने उत्पन्न करने वाले ईश्वर को सर्वोत्तम योग से भी अब तक भली प्रकार नहीं जान सका हूं। हे नारद! भगवान् के चरण कमल जो शरणागतों को जन्म मरण के जंजाल से छुड़ा देते हैं और मंगल करते हैं, उन्हीं सर्व श्रेष्ठ चरणों को मैं प्रणाम करता हूं। जैसे आकाश आप ही अपने अन्त को नहीं जानता इसी प्रकार ईश्वर भी अपनी अनन्त माया के विभव का अन्त नहीं पा सके, तो अन्य लोगों की बात ही क्या है? परमेश्वर की निष्प्रपंच गति को मैं, तुम और महादेव भी नहीं जानते, तब अन्य देवता कैसे जान सकते हैं? ईश्वर की माया से मोहित हम लोग ईश्वर की माया से उत्पन्न हुये इस संसार को अपनी बुद्धि के अनुसार जानते हैं। हम लोग जिन ईश्वर के अवतार और लीलाओं को गाते हैं किन्तु यथार्थ तत्व को नहीं जान सके, उन भगवान् को प्रणाम है। वे ही आदि अन्त हीन पुराण पुरुष अपने से अपने में आपको उत्पन्न, पालन और नाश करते हैं। भगवान् केवल शुद्ध ज्ञानमय सब में विराजमान हैं, सत्य स्वरूप, निगुण, पूर्ण, अन्त से रहित और नित्य अद्वितीय हैं।

हे नारद! जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, जिनकी इन्द्रियां वश में हैं और जिनकी विषय भोग की वासनायें शान्त हो गई हैं, वे ही ईश्वर को जान सके हैं, और जिनका अंतःकरण शुद्ध नहीं है, इन्द्रियां वश में नहीं हैं और जो विषय भोग में आसक्त हैं, वे युक्तियों से ईश्वर को जानना चाहें, तो जान नहीं सकते। ईश्वर के देखने के लिये दिव्य और सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता है, उन पुराण पुरुष का आदि पुरुष अवतार है, काल, स्वभाव, सत्, असत्, मन, पंच तत्व, अहंकार, तीनों गुण, इन्द्रियां, विराट् स्थावर जंगमभाव, ये सब समष्टि व्यष्टि ईश्वर के ही अवतार हैं। मैं, शिव, विष्णु, दक्षादि प्रजापति, मुनिगण, ऊपर के लोकों के स्वामी, अन्तरिक्ष के स्वामी, पृथिवी के स्वामी, अतलादि सात पातालों के स्वामी ये सभी ईश्वर के अवतार हैं। गंधर्व, विद्याधर, चारण, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, सर्प, नाग, ऋषि, पितर, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर और दानवेन्द्र सभी ईश्वर के अवतार हैं। प्रेत, पिशाच, भूत, कूष्मांड, जल जन्तु, मृग, पशु, पक्षी, सभी ईश्वर के अवतार हैं। ऐश्वर्य, तेज, ओज, उत्साह, बल, क्षमा, शोभा, निन्दनीय कर्म में घृणा, विभूति, मूर्तियुक्त सृष्टि अमूर्तियुक्त सृष्टि सभी परमेश्वर रूप हैं। सब साधारण अवतार हैं और वाराह, सुयज्ञ, कपिल देव, दत्तात्रेय, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नर, नारायण, ध्रुव, पृथु, ऋषभ, हयग्रीव, मत्स्य, कूर्म, नृसिंह, वामन, हंस, मन्वन्तर, धन्वन्तरि, परशुराम, राम, कृष्ण आदि को ऋषि लोग प्रधान अवतार कहते हैं। हे नारद! जो ईश्वर की माया का वर्णन करते हैं, सुनते हैं और सुन कर आनन्दित होते हैं, उनका आत्मा कभी माया में मोहित नहीं होता किन्तु सर्वदा शोक मोह रहित रहता है। अच्छा! तुम्हारा कल्याण हो, जो, कुछ तुमने पूछा था, सब मैंने कह दिया।

पाठकगण! यह ब्रह्मांडगोल का सृष्टि का

पुरातन इतिहास ब्रह्माजी ने नारद से कहा है। यह इतिहास साईंस फिलोसॉफी की पराकाष्ठा यानी अन्तिम सीमा है। यदि आप इसका एकाग्र चित्त से विचार करेंगे, तो स्पष्ट हो जायगा कि यह सब संसारमाया रूप है, माया अपार है, माया का कोई पता नहीं लग सका हां मायाधीश परमेश्वर को शुद्ध अंतःकरण वाला पुरुष जान सका है और उसको जानकर और उसको जान कर और उसी की शरण होकर माया से मुक्त हो सका है। इस इतिहास से यह भी स्पष्ट होता है कि समस्त विश्व ईश्वर रूप ही है! जब ऐसा है तो राग द्वेष कैसा सब में सम भाव रखना ही ईश्वर की भक्ति और शरण है। जो भगवान् की शरण लेता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। पाप रहित होने से सुखी होता है, इसलिये:-

कु- लीजे ईश्वर की शरण, विषय भोग दो त्याग।
वैर किसी से मत करो, ईश्वर पद अनुराग॥
ईश्वर पद अनुराग, अहंता ममता त्यागो।
निश्चय हो कल्याण, मोह निद्रा से जागो॥
भोला कहे पुकार, राग जग से तज दीजे।
कीजे नाही द्वेष, शरण ईश्वर की लीजे॥

भजन

मो मन गिरिधर छवि पै अटक्यो।
ललित त्रिभंग चालपै चलिकै,
चिबुक चारु गड़ि ठटक्यो॥ १॥
सजल स्याम घन बरन लीन ह्वै,
फिरि चित अनत न भटक्यो।
कृष्णदास किये प्रान निछावर,
यह तन जग सिर पटक्यो॥ २॥

२

कहा कहा नहिं सहत सरीर।
स्याम सरन बिनु करम सहाइन,
जनम-मरन की पीर॥ १॥
करुनावंत साधु-सङ्गति बिनु,
मनहिं देय को धीर।
भक्ति भागवत बिनु को मेटै,
सुख दै दुखकी भीर॥ २॥
बिनु अपराध चहूं दिसि बरषत,
पिसुन बचन अति तीर।
कृष्ण-कृपा कवचौतें उबरै,
पावै तबही सीर॥ ३॥
चेतहु भैया, बेगि बढ़ी कलि,
काल नदी गम्भीर।
व्यास बचन बलि वृन्दावन बसि,
सेवहु कुंज कुटीर॥ ४॥

३

भजौ सुत, सांचे स्याम पिताहि।
जाके सरन जात ही मिटिहै,
दारुन दुखकी दाहि॥ १॥
कृपावंत भगवंत सुने मैं,
छिनि छाँड़ी जिनि ताहि।
तेरे सकल मनोरथ पूजैं,
जो मथुरा लौं जाहि॥ २॥
वै गोपाल दयाल दीन तू,
करिहैं कृपा निबाहि।
और न ठौर अनाथ दुखिनकों,
मैं देख्यौ जग माँहि॥ ३॥
करुना वरुनालयकी महिमा,
मोपै कही न जाहि।
व्यासदासके प्रभुको सेवत,
हारि भई कहु काहि?॥ ४॥